ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

तारण त्रिवेणी

(भाग-1)

श्री तारणस्वामी द्वारा रचित उपदेशशुद्धसार की
विविध गाथाओं पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत 2080	वीर संवत 2550	ई. सन 2024

—: प्रकाशन :—

आध्यात्मिक सन्त पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की 135वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर

वैशाख शुक्ल 2, दिनांक 09 मई 2024

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

श्रीमद् तारणतरणस्वामी द्वारा रचित उपदेशशुद्धसार की चुनी हुई गाथाओं पर आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दशः धारावाही प्रवचन प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है।

श्रीमद् तारणस्वामी १६वीं शताब्दी के उस कालचक्र में हुए महापुरुष हैं जिस समय राजनीति में उथल-पुथल, सम्प्रदायों में तनाव का जोर था। ऐसी विषम परिस्थितियों में आपने अपनी सरल सुबोध शैली से जैन तत्त्वज्ञान को न मात्र जीवन्त ही रखा अपितु अपने प्रभावक व्यक्तित्व से उसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी किया। कहा जाता है कि आपके उपदेशों से लगभग पाँच लाख लोगों ने साम्प्रदायिक व्यामोह को त्यागकर पवित्र जिनमार्ग को अपनाया था। आपके समागम में सभी जाति और वर्ग के लोग आते थे और पवित्र जिनशासन के अनुगामी बन जाते थे।

वीर निर्वाण संवत् 2491 में पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य अनुयायी सागर निवासी श्रीमन्त समाजभूषण सेठ भगवानदास शोभालालजी ने पूज्य गुरुदेवश्री से तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार की विशिष्ट गाथाओं पर प्रवचन प्रदान करने का अनुरोध किया। जिसे स्वीकार कर गुरुदेवश्री ने ये प्रवचन प्रदान किये। विदित हो कि इससे पूर्व भी गुरुदेवश्री ने तारणस्वामी द्वारा रचित ज्ञानसमुच्चयसार तथा उपदेशशुद्धसार ग्रन्थ पर प्रवचन किये हैं। इन तीनों ग्रन्थों पर हुए आठ-आठ प्रवचनों के संकलन संकलित प्रवचन के रूप में अष्ट प्रवचन भाग 1, 2, 3 के रूप में उपलब्ध हैं।

अब यह उपदेशशुद्धसार के शब्दशः प्रवचन आपके सन्मुख प्रस्तुत किये जा रहे हैं। अत्यन्त हर्ष के साथ सूचित करते हैं कि एक मुमुक्षु भाई के सौजन्य से प्रस्तुत उपदेशशुद्धसार और ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थ के ऑडियो प्रवचन भी उपलब्ध हो गये हैं, जिनका शब्दशः प्रकाशन प्रस्तुत किया जा रहा है।

सभी जीव इन प्रवचनों का लाभ अवश्य लेंगे, इसी भावना और विश्वास के साथ...

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं०	दिनांक	गाथा	पृ.सं.
१	१२-०९-१९६३	गाथा-११, १२, ४९२, ४९३, ९५, ९७ श्रावकाचार-३०२, ३०५, ३१४, ३५९, ४२७	००१
२	१३-०९-१९६३	गाथा-११७ से ११९, ४९३-४९३ ज्ञानसमुच्चयसार-११२, ११४, १८९	०२२
३	१४-०९-१९६३	गाथा-४९४ से ४९७ ज्ञानसमुच्चयसार-६९ श्रावकाचार-६६, ६७, २९६	०४२
४	१५-०९-१९६३	गाथा-४९८ से ५०० श्रावकाचार-३०, ३३, ३४, ९४, २०८, २०९, २१२, २३६, २३७	०६१
५	१६-०९-१९६३	गाथा-१ से ३, ५०१, ५०२ श्रावकाचार-८९, २९९ ममलपाहुड-२९१	०८२
६	२१-०९-१९६३	गाथा-५०८-५०९ ज्ञानसमुच्चयसार-३५९, ४२७ श्रावकाचार-३०२, ३०५, ३१४	१०३

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

तारण त्रिवेणी

(भाग - 1)

श्री तारणस्वामी द्वारा रचित उपदेशशुद्धसार की विविध गाथाओं पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शब्दशः प्रवचन

भाद्र कृष्ण ९, गुरुवार, दिनांक - १२-०९-१९६३
गाथा-४९२-४९३, प्रवचन-१

यह एक तारणस्वामी रचित उपदेशशुद्धसार है। इसमें क्या कहा जाता है कि सर्वज्ञ परमात्मा का उपदेश मुख्य साररूप क्या है? सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव का सार—उपदेश क्या है कि जिसमें आत्मा का मोक्षमार्ग प्रगट हो? मोक्षमार्ग का अधिकार लिया है। देखो, ४९२ गाथा है।

अप्पं च अप्प तारं, नाव विषेसं च पार गच्छंति।
अप्प ममल सरूवं, कम्मं कम्मं षिपिऊन तिविहि जोएन ॥४९२॥

पहला शब्द आया है, देखो। '**अप्पं च अप्प तारं,**' **यह आतमा आप ही अपने को तारनेवाला है...** ऐसा उपदेश चले, उसका नाम सच्चा उपदेश कहने में आता है। यह यहाँ कहते हैं। जो उपदेश, यह उपदेश है न? तो जिस उपदेश में ऐसा कहने में आता है कि '**अप्पं च अप्प तारं,**' भगवान आत्मा अपना शुद्ध निर्विकल्प आनन्दस्वरूप है, वही स्वयं अपने को तारता है। लो! दूसरा कोई तारनेवाला नहीं। देव, गुरु और शास्त्र भी अपने को तारे, ऐसा उपदेश हो तो वह उपदेश शुद्ध नहीं है। समझ में आया? वह

उपदेश शुद्ध नहीं। इसके लिये कहते हैं। उपदेश शुद्ध उसे कहते हैं कि जिसमें '**अप्पं च अप्प तारं,**' अपना आत्मा, यह आत्मा किसे कहते हैं ? यह विशेष आगे लेंगे। समझ में आया ? यह अनन्त गुण है या नहीं ? इसमें होंगे अनन्त गुण, नहीं ? अनन्त गुण। पृष्ठ ४१ है, भाई! पृष्ठ इसमें ४१ है न। उसमें ही ४१ पृष्ठ है। १४१। यहाँ तो अनन्त गुण स्थापित करना है। खबर नहीं कि एक द्रव्य में अनन्तगुण हैं। कहो, शोभालालजी!

यह ५५ गाथा। १४१ पृष्ठ पर देखो। उपदेश शुद्ध में ऐसा आता है... ५५ है न ? कि,

लीनं अनन्तंतं, लीनं सुभाव न्यान सहकारं।
एयं च गुन विसुद्धं, एयं तिक्तंति सरनि संसारे॥५५॥

देखो, पहले तो कि एक आत्मा में यहाँ '**अप्प तारं**' है न पहला शब्द ? '**अप्पं च अप्प तारं,**' परन्तु यह आत्मा है कैसा ? कि जिसमें अनन्त गुण हैं। महेन्द्रभाई! समझ में आया ? अनन्त गुण हैं। अभी अनन्त गुण की खबर नहीं तो आत्मा समझे बिना किसका विचार करे और ध्यान करे ? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक आत्मा में देखो, '**लीनं अनन्तंतं**' साधु की प्रधानता से कथन है। तो साधु... सम्यग्दृष्टि भी उसमें आ जाता है। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वह द्रव्य में अनन्त गुण है, अनन्त गुण है। संख्या से अनन्त, हों! अनन्त काल रहनेवाले हैं, ऐसा नहीं। अनन्त काल रहेंगे, यह तो काल की अपेक्षा है। क्या कहा ? क्या कहा ? संख्या से अनन्त हैं। अनन्त काल रहेंगे, यह अलग, वह तो काल की अपेक्षा आयी।

एक वस्तु अपना आत्मा, उसमें संख्या से अनन्त गुण हैं। एक ज्ञान, एक दर्शन, एक आनन्द, एक अस्तित्व, एक वस्तुत्व—ऐसे एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक आत्मा में अनन्त गुण हैं। अभी अनन्त गुण क्या है, उसकी खबर नहीं तो आत्मा एकरूप, उसकी उसे खबर पड़ती नहीं। '**लीनं अनन्तंतं**' उपदेश शुद्ध भगवान की वाणी में ऐसा आया, ऐसा यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि शुद्ध उपदेश शुद्धसार उसे कहते हैं कि एक आत्मा में अनन्त गुण, ऐसे अनन्त आत्मा, ऐसे अनन्त आत्मा तो एक आत्मा में अनन्त गुण हैं, उसमें लीन। देखो, अनन्तानन्त गुण में—स्वभाव में लीन रहता है।

'**सुभाव न्याय सहकारं।**' आत्मज्ञान की सहायता समभाव से तन्मय। वीतरागभाव है न साथ में? दृष्टि अनन्त गुण के पिण्डरूप आत्मा के ऊपर रही और उसमें समभाव आया। अरागी-वीतरागी निर्विकल्प परिणाम का सहकार मिला।

'**एयं च गुन विसुद्धं**' कि जो पंच महाव्रत, निश्चय से तो पाँच महाव्रत लो अन्दर में निर्मलानन्द में रहना, वह पंच महाव्रत है। अहिंसा आदि राग विकल्प पंच महाव्रत का उठता है, वह भी राग है। वह भी वास्तव में तो हिंसा है व्यवहार। अन्तर चिदानन्द अनन्त गुण का निर्विकल्प स्वभाव में अहिंसा अर्थात् लीनता होना, उसका नाम अहिंसा है। वही सत्यस्वरूप परमानन्द अनन्त गुण के पिण्ड में लीन होना, वह सत्य व्रत है। समझ में आया? ऐसा अपना स्वरूप पूर्णानन्द एक राग का कण भी लेना नहीं, अपने स्वरूप में अदत्तपना अर्थात् पर का लिये बिना अपने अनन्त आनन्द को ग्रहण करके लीन होना, इसका नाम अदत्त (अचौर्य) महाव्रत है। और ब्रह्म महाव्रत। ब्रह्मानन्दस्वरूप अपना शुद्ध, उसमें लीन होना, वह ब्रह्मचर्य महाव्रत है और परिग्रह का एक कण नहीं, परन्तु अपने पूर्णानन्द को पकड़कर, अनन्त गुण को पकड़कर परि-ग्रह अर्थात् उसमें लीन होना, उसे पाँचवाँ महाव्रत कहा जाता है। बाबूलालजी! बात सब दूसरी है बहुत।

देखो, '**वित्तंति सरनि संसारे**' इन पाँच गुणों के प्रभाव से संसार के मार्ग में यह पाँच महाव्रत के विकल्प नहीं लेना, हों! समझ में आया? विकल्प नहीं लेना। पंच महाव्रत जो अट्ठाईस मूलगुण में आते हैं, वह तो राग है, वह तो आस्रव है। अन्तर स्वरूप के अन्दर में जो अभी कहा, उस प्रकार से '**वित्तंति सरनि संसारे**' संसाररूपी... उससे तिर जाता है, उससे तिर जाता है। देखो, इसमें लिखा है। साधु आत्मा की अनन्ता अनन्त शक्तियों को पहिचाननेवाला होता है। आत्मा अपने अनन्त गुण-पर्याय का समुदाय है। उसमें अनन्ता अनन्त में यह आया। अनन्त गुण का समुदाय आत्मा है। समझ में आया? निश्चयनय द्वारा उन जगत के आत्माओं को देखता है। अपने में अनन्त गुण हैं, ऐसे प्रत्येक आत्मा में अनन्त गुण हैं, ऐसा ज्ञानी देखता है। ऐसा उपदेश हो, उसका नाम शुद्ध उपदेश कहा जाता है। उसका नाम उपदेशशुद्धसार कहा जाता है। समझ में आया? कहते हैं... यहाँ तो अनन्त की बात करनी थी।

'**अप्पं च अप्प तारं**' आत्मा ऐसा '**अप्पं**' अर्थात् अनन्त गुणवाला... यह ४९२।

जो चलता है वह। यहाँ तो यह दृष्टान्त दिया था। २८५ पृष्ठ पर ४९२। वह बराबर खबर नहीं हो इसे। सुने नहीं न। समझ में आया? क्या कहते हैं? **यह आत्मा आप ही अपने को तारनेवाला है...** सब निकाल दिया। देव-गुरु-शास्त्र भी तारते हैं, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। व्यवहार का कथन निमित्त का (कथन) है। अपना स्वरूप अखण्डानन्द पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड जो अपना सहज स्वभाव है, ऐसी अन्तर में दृष्टि और ज्ञान और रमणता करने से... मोक्षमार्ग है न? तो ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी अन्तर अनुभव दृष्टि और उसके स्वज्ञेय का ज्ञान करके उसमें लीन होना, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है। उस मोक्षमार्ग का नाम इस कारण से लिया है। समझ में आया?

'**अप्पं च अप्प तारं**' **आप ही अपने को...** '**आप ही**' 'ही' शब्द है न? निश्चय से अपने को आत्मा तारता है। दूसरा कोई तारनेवाला है ही नहीं। बराबर है? रामस्वरूपजी! तो भगवान को तारणतरण कहा जाता है न? वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। अपना आत्मा अपने से तिरता है, तब उपदेशक जो ज्ञानी मिले, उनके निमित्त से कहने में आया है कि आप तारणतरण हो, ऐसा व्यवहार से कहने में आया। वास्तव में उपदेश का सार तो यह आना चाहिए। आत्मा निर्विकल्प अखण्डानन्द प्रभु अपनी शक्ति के अवलम्बन से स्वयं से अपने को तारता है। इसके तीन अर्थ आये, कि सम्यग्दर्शन भी अपने आत्मा से होता है। जो तिरने का उपाय है, वह अपने से होता है। और सम्यग्ज्ञान भी अपने आत्मा के आश्रय से होता है और सम्यक्चारित्र भी '**अप्प तारं**' अर्थात् तिरने का मार्ग जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह चारित्र भी अपने से होता है। कहो, बाबूलालजी! अन्दर में अभी शब्द पड़े नहीं। क्या कहते हैं तारणस्वामी? पूरा समाज पड़ा है, परन्तु तारणस्वामी क्या कहते हैं, खबर है? शोभालालजी!

'**अप्पं च अप्प तारं**' यह एक शब्द यहाँ लिया। '**नाव विषेसं च पार गच्छंति**' देखो, अब दृष्टान्त दिया, दृष्टान्त दिया। **जैसे कोई नौका विशेष आप से आप ही समुद्र के पार आ जाती है...** पवन की आवश्यकता नहीं। अपने आप पार हो जाती है। उसी प्रकार आत्मा अपनी नौका द्वारा समुद्र के किनारे—संसार के किनारे आकर स्वयं ही पार कर लेता है। नौका का दृष्टान्त दिया। समझ में आया? '**अप्प ममल सरूवं**' कैसा है?

कि आत्मा एक विमलस्वरूप, शुद्ध चिदानन्द अनादि-अनन्त पवित्र का पिण्ड शुद्ध है और विमलस्वरूप, ऐसा यदि कहो तो शुद्ध जैसा त्रिकाल है, उसका शुद्धोपयोग करने से ही मुक्ति को प्राप्त होता है। शुभाशुभ परिणाम बीच में आते हैं, वह मुक्ति का कारण नहीं। यह मोक्षमार्ग में तारणस्वामी कहते हैं।

मुमुक्षु : मल कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैल कहते हैं। अभी आयेगा, यह भी आयेगा। यह पुण्य-पाप में है न! यह पृष्ठ ६६ है, भाई! यह ५८। ५८ है देखो, ५८। यह पृष्ठ ध्यान रखकर रखना। यह वापस रखना। यह तो दृष्टान्तरूप से आता है। पहले ५७ पृष्ठ लो, निश्चय समकित। ५७। देखो, निश्चय समकित। यहाँ मोक्षमार्ग में पहले निश्चय समकित होता है तो पहले वहाँ बता दिया है। यहाँ तो तीनों की एकता बतायी है।

सम्मत्त सुद्ध सुद्धं, सुद्धं दर्सेइ विमल रूवेन।
कम्मं तिविहि विमुक्कं, रागं दोषं च गारवं षिपनं॥७६॥

'**सम्मत्त सुद्ध सुद्धं**' देखो, परम शुद्ध सम्यग्दर्शन, '**सुद्ध सुद्धं**' का अर्थ परम शुद्ध। भाई! दो शब्द है न? परम शुद्ध निर्विकल्प अपना (सम्यग्दर्शन)। जो व्यवहार समकित देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह परम शुद्ध समकित नहीं। समझ में आया? सात तत्त्व के भेदवाली श्रद्धा भी परम समकित नहीं। '**सम्मत्त सुद्ध सुद्धं**' अकेला परम शुद्ध परमानन्दमूर्ति अखण्ड अनन्त गुण जो पहले कहे, ऐसे एकरूप पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन शुद्ध निर्विकल्प उत्पन्न होता है। उसे उपदेश शुद्ध में ऐसा कहा कि वही समकित है, दूसरे किसी को समकित कहना नहीं। यह उपदेश में ऐसा आता है। उपदेशशुद्धसार में ऐसा उपदेश हो, वह यथार्थ उपदेश है, दूसरा उपदेश, वह यथार्थ उपदेश है नहीं। समझ में आया? लो, फिर।

'**सुद्धं दर्सेइ विमल रूवेन**' निर्मल स्वभाव से आत्मा को शुद्ध भावकर्म, नोकर्म, द्रव्यकर्म से भिन्न श्रद्धा में लिया जाता है। देखो, अपना आत्मा जड़कर्म से भिन्न, नोकर्म अर्थात् शरीर, वाणी से भिन्न और पुण्य-पाप का विकल्प जो राग उठता है दया, दान, व्रत, भक्ति, उससे भिन्न। ऐसे द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से भिन्न श्रद्धा में लिया

जाये, अन्तर्दृष्टि अनुभव में लिया जाये, उसे निश्चय समकित शुद्ध उपदेश में भगवान की वाणी में ऐसा आया है। शोभालालजी! कठिन बात है, हों! यह लोगों को, साधारण पण्डितों को खटके, ऐसी चीज़ है। अकेला निश्चय स्वभाव स्वयं से... हो, आता है, विकल्प होता है, राग होता है, परन्तु वह बन्ध का मार्ग बीच में आता है, वह मोक्ष का मार्ग है नहीं। समझ में आया?

और '**रागं दोषं च गारवं षिपनं**' देखो, कैसा है निश्चय समकित? कि अपने शुद्ध स्वरूप की अन्तर निर्विकल्प प्रतीति के भान द्वारा संसार के राग-द्वेष मदों का जहाँ त्याग किया जाता है। जहाँ राग का अभाव हो जाता है, सम्यग्दृष्टि के विषय में राग विषय होता ही नहीं। निश्चय समकितदृष्टि के विषय में अखण्ड आत्मा पूर्णानन्द ही विषय है। जिसमें समकित के कारण से राग-द्वेष नाश होते हैं। उसके बाद दूसरा। यह ५८ पृष्ठ पर। ५८-५८। अपने लेना है इसे? पुण्य-पाप। देखो, शुद्ध उपदेश समकित में ऐसा आना चाहिए, उसका शुद्ध उपदेश भगवान का कहा जाता है। कि

.....

शुद्ध उपदेश, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! यह सूक्ष्म बात है। अन्दर बुद्धि बहुत तीव्र होनी चाहिए। ऐसा नहीं चलता कि हमको थोड़ी बुद्धि है, क्या करें? भाई! यह समझ लें, लो। यह भाई बाबूलालजी बुद्धिवाले हैं, ये समझे, हम क्या करें? नहीं, सबको यथार्थ समझना पड़ेगा। समझ में आया? तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वभाव को दूर कर देता है। विपरीत अभिप्राय को रखता नहीं। कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र, नौ तत्त्व में विपरीतता, छह द्रव्य आदि में विपरीत भाव, वह सब छोड़ देता है। ... पुण्य-पाप का राग, इन्द्रिय-विषय का राग, वह नहीं रखता। देखो, ... पुण्य और पाप और पर विषय की ओर का लक्ष्य छोड़ देता है। ... पुण्य-पाप को भी खपानेयोग्य मानता है। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव सम्यग्दृष्टि नाश करनेयोग्य मानता है, आदरनेयोग्य नहीं। बरैयाजी कहते हैं न, पुण्य के ऊपर तो यहाँ बड़ी... क्या कहते हैं? दुर्दशा हुई। देखो! यहाँ तारणस्वामी क्या कहते हैं? समझ में आया? यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देखो, ... पुण्य और पाप का भाव, उसका बन्धन और उसका सब विषय पर है, ऐसा यहाँ कहते हैं। शुभ-अशुभभाव है न, तो उसका विषय पर है। शुभाशुभराग आत्मा को विषय नहीं कर सकते। शुभराग आता है, होता है, परन्तु उसका विषय देव-गुरु-शास्त्र आदि पर है। तो शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप और उसका विषय लक्ष्य सब नाश करने की दृष्टि समकितदृष्टि की होती है। समझ में आया? विषय उसे नहीं रहता। ... कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान वहाँ नहीं है। कुज्ञान जो सर्वज्ञ से विपरीत कोई माननेवाले, त्रिलोकनाथ आत्मा परमात्मा ने जो अनन्त गुण आत्मा कहा, उससे कोई विपरीत कहनेवाला हो तो उसका ज्ञान सम्यग्दृष्टि के पास रहता नहीं। कुज्ञान का नाश कर डालता है। कुमति को, कुश्रुत को और विभंग को नाश करता है। अथवा... तीन शब्द पड़े हैं न? संशय, विमोह और विभ्रम दोष है। उसका नाश करता है। जहाँ नहीं संशय, विमोह और विभ्रम। अज्ञान के तीन प्रकार के दोष है। संशय—ऐसा होगा या ऐसा होगा? यह कहते हैं, वह सच्चा होगा या यह कहते हैं, वह सच्चा होगा? कुछ खबर पड़ती नहीं। इनको माननेवाले थोड़े तो इनकी बात सच्ची होगी? या इनकी सच्ची होगी? ऐसा संशय सम्यग्दृष्टि नहीं रखते। ऐसा शुद्ध उपदेश में आया है।

विमोह—विमोह अर्थात् विपरीतता अथवा अनिश्चितता। कुछ होगा, अपने को पता लगता नहीं। क्या होगा? सन्त क्या कहते हैं? सर्वज्ञ क्या कहते हैं? ऐसा विमोह सम्यग्दृष्टि को विमोह होता नहीं। यह अज्ञान के तीन दोष हैं। संशय, विमोह और विभ्रम। तीन दोष हैं और विभ्रम—विपरीत। अत्यन्त विपरीत मान्यता। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने अनन्त गुणवाला एक आत्मा, अनन्त गुणवाला एक परमाणु, ऐसे अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा कहे, उनसे विरुद्ध कहनेवाले में कुछ विपरीत होगा या नहीं? कोई मान्यता सम्यग्दृष्टि को रहती नहीं। नाश कर डालता है अपने स्वरूप में। ऐसा उपदेश होता है, उसे इष्ट उपदेश कहा जाता है।

यह इष्टोपदेश है न भाई अपने? पूज्यपादस्वामी का। पूज्यपादस्वामी का इष्टोपदेश। यह उपदेशशुद्धसार कहा। उन्होंने इष्टोपदेश कहा है। इष्ट उपदेश किसे कहते हैं?

पूज्यपादस्वामी जो तत्त्वार्थसूत्र की टीका करनेवाले हुए। उसमें करते-करते ऐसा लिया है कि देखो, सुनो, उसे इष्ट उपदेश कहते हैं कि कोई भी द्रव्य अपना कार्य करे, तब साथ में जो निमित्त है, वह उदासीन है। उसके कारण से होता नहीं। धर्मास्तिकायवत्, ऐसा ३५ गाथा में वहाँ पड़ा है। इष्टोपदेश उसे कहते हैं।

यहाँ यह कहते हैं, देखो, समझ में आया? पर का विषय और परसम्बन्धी शुभाशुभभाव के लक्ष्य से जो राग उत्पन्न होता है, वह सम्यग्दृष्टि को नाश करनेयोग्य है। रखनेयोग्य और उपादेय है, ऐसा सम्यग्दृष्टि तीन काल—तीन लोक में मानता नहीं। समझ में आया? यह ३५ गाथा में... समझ में आया? धर्मास्तिकायवत्, ऐसा कहा है। इष्ट उपदेश किसे कहते हैं? कि प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्याय का कार्य करता है तो, जैसे गति करने में जीव-पुद्गल स्वयं गति करते हैं, तब धर्मास्तिकाय उदासीन निमित्त है, कोई उसे प्रेरक होकर चलाता है, ऐसा नहीं है। ऐसे उपदेश को इष्टोपदेश कहते हैं।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि जिसमें पुण्य और पाप और पुण्य-पाप का लक्ष्य जो पर के ऊपर जाता है, उसका नाश करने का उपदेश दे, उसका नाम शुद्ध उपदेश कहने में आता है। निमित्त और पुण्य-पाप दोनों चढ़ा दिये। समझ में आया? राजारामजी! समझ में आया? देखो, जो राग पर की ओर का लक्ष्य कराता है, राग में तो पर का ही लक्ष्य है न शुभाशुभभाव में? शुभभाव में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का राग, नाम स्मरण का और अशुभ में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, कमाने का, तो वह शुभ-अशुभ का विषय और शुभाशुभ सबका लक्ष्य छोड़कर अपने शुद्ध चिदानन्द में, आनन्द में दृष्टि करना, इसका नाम भगवान के शुद्ध उपदेश को उपदेश कहते हैं। दूसरा उपदेश, उसे उपदेश नहीं कहते। वह उपदेश है। ऐसा कोई कहे कि ऐसे लाभ होगा, पुण्य से लाभ होगा, धर्म होगा। पाप से ऐसे होगा, परलक्ष्य करते-करते स्वलक्ष्य आ जाएगा, वह उपदेश भगवान के घर का नहीं है। वह अज्ञानी के घर का उपदेश है, उसे शुद्ध उपदेश नहीं कहा जाता। समझ में आया? समझ में आया? भाई! सूक्ष्म बात है।

देखो, यह तारणस्वामी यह कहते हैं। तो तारण समाज में इसकी कुछ प्रथा होनी चाहिए या नहीं? क्यों बरैयाजी! बड़े भाई को कहते हैं जरा। इसे समझना पड़ेगा, क्या

कहते हैं। ऐसे समझे बिना देव-गुरु को मानना, वह मान्यता सच्ची नहीं। 'देव-गुरु-धर्म की शुद्धि कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो?' यह क्या कहते हैं, इसकी श्रद्धा की खबर नहीं और तू कहता है कि मुझे मान्य है। देव मान्य है, गुरु मान्य है। कहाँ से आया मानना तुझे? यह कहते हैं, ऐसी श्रद्धा की तो तुझे खबर नहीं। समझ में आया? देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा हमको है, परन्तु देव-गुरु क्या कहते हैं, उसकी तो खबर नहीं।

मुमुक्षु : वह तो सच्चा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सच्चा कहते हैं? उसकी तो खबर भी नहीं। सच्चा क्या और झूठा क्या है? 'देव गुरु धर्म की श्रद्धा कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो? और शुद्ध श्रद्धान बिन सर्व क्रिया करे छार पर लींपणुं तेह जाणो।' छार समझते हो? यह राखोड़ी—राख होती है न? राख के ऊपर लींपण, बस। धूल में भी नहीं रहता उसमें। इसी प्रकार शुद्ध श्रद्धा के भान बिना देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा सच्ची नहीं और उसके क्रियाकाण्ड करके मर जाये, पंच महाव्रत और बारह-बारह महीने के अपवास करके मर जाये, परन्तु उसे कुछ लाभ नहीं होता। समझ में आया?

विभ्रम दोष। ... संसार में भ्रमण कराने का मोहान्तभाव भी वहाँ नहीं। मोहान्तदर्शन—मोह अन्ध—जिसमें चैतन्य क्या चीज़ है? पूर्णानन्द क्या है, उसकी खबर नहीं, ऐसा मोह अन्धकार का तो ज्ञानी नाश कर डालता है। यह दृष्टान्त दिया। समझ में आया? अब यहाँ अपने। यह आ गया न पुण्य-पाप में?

अप्पं च अप्प तारं, नाव विषेसं च पार गच्छंति।
अप्प ममल सरूवं, कम्मं कम्मं षिपिऊन तिविहि जोएन॥४९२॥

तीन प्रकार का योग जो है, उसका लक्ष्य छोड़कर अपने आत्मा के आश्रय से जो तीन प्रकार के योग का नाश करता है। कहो, समझ में आया? वहाँ शुद्ध उपयोग लिया है। शुद्ध उपयोग। क्या कहते हैं? कि शुभ-अशुभभाव हो, परन्तु शुभ-अशुभभाव सम्यग्दर्शन का कारण है, सम्यग्ज्ञान का कारण है या सम्यक् चारित्र का कारण है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। समझ में आया? उसका नाश करने का उपाय कहे, ऐसा शुद्ध उपदेश आना चाहिए कि अपना स्वभाव एकरूप है। यह दृष्टान्त दिया था न उसमें? श्रावकाचार

में दिया था न ? कछुआ—कछुआ। उसमें भी आता है, उस ४०१ पृष्ठ पर, नहीं ? ४०१ पृष्ठ। परन्तु अपने वह मछली का दृष्टान्त है न इसमें ? है ? यह पृष्ठ १३। पृष्ठ १३ है न। १३ पृष्ठ पर, देखो ! यह पहले तो ११ गाथा। १३ पृष्ठ पर है न ११ (गाथा) ?

उवएस नंतनंत, नंत चतुष्ट सुदिस्ट विमलं च।
मलं सुभाव न दिट्ठं, विमल दिट्ठि चे देइ अषयं च॥११॥

है ? एक तो अर्हंतदेव, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य—ऐसे चार अनन्त (चतुष्टय के) धारी हैं। सर्वज्ञ अरिहन्त परमात्मा की पर्याय में अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। समझ में आया ? एक बात। अनन्त चतुष्टय यह एक बात की। **'सुदिस्ट विमलं च' उनके निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शन है...** भगवान सर्वज्ञ के पास क्षायिक सम्यग्दर्शन है। दूसरी बात। **'मलं सुभाव न दिट्ठं' कोई रागादि से मलिन स्वभाव उनमें नहीं दिखता...** भगवान के पास राग-विकल्प उपदेश देने का कोई विकल्प है नहीं। एक बात।

पश्चात्। **'उवएस नंतनंत'** अनन्तानन्त पदार्थों का परम गम्भीर उपदेश देते हैं। यह दो शब्द पड़े हैं न ? **'उवएस नंतनंत'** भाई ! दो शब्द हैं। शुद्ध उपदेश में, वीतराग के उपदेश में शुद्ध उपदेश उसे कहते हैं कि अनन्त पदार्थ जगत में अनन्त पदार्थ हैं। पहले अनन्त गुण कहे थे एक द्रव्य में। यहाँ अनन्त पदार्थ हैं। एक नहीं, अनन्ता अनन्त। दो अनन्त शब्द लिये हैं न ? तो एक में इन्होंने ऐसा कहा कि अनन्त पदार्थों का अनन्त, गम्भीर उपदेश उसमें आता है। गम्भीर गुण, गम्भीर पर्याय। गम्भीर समझे ? गहराई। एक-एक द्रव्य में गुण-पर्याय की गम्भीरता पड़ी है। ऐसे अनन्ता-अनन्त पदार्थों का उपदेश वीतराग की वाणी में आता है। कहो, किसके साथ तुलना करना ? डेरैयाजी ! भाई इसमें कुछ है, इसमें कुछ है। वेदान्त में है। अर्थात् वह भी बड़ा ... साधु हो गया है। अरे ! तारणस्वामी तो कहते हैं कि ऐसे अनन्तानन्त एक पदार्थ में गुण, ऐसे अनन्ता अनन्त पदार्थ हैं, ऐसा उपदेश जिसमें नहीं, वह उपदेश वृथा-मिथ्या उपदेश है। कहो, सेठ ! समझ में आया ?

परम जैन परमेश्वर के भक्त से यथार्थ बात जो जैन परमेश्वर की थी, उसने ऐसा

कहा है। उसके साथ दूसरे की तुलना करे तो तुलना हो नहीं सकती। समझ में आया? दूसरे कहे कि, लो ऐसा हुआ... ऐसे हुए... कबीर हुए, दादु हुए। यह अध्यात्मवाणी है। अरे! कहाँ वह वाणी और कहाँ यह वाणी! इसकी तो खबर भी नहीं कि अध्यात्म क्या है? समझ में आया? ऐसी गड़बड़ कर दी, हों सेठ ने। बड़ी पुस्तक में गड़बड़ की है। सेठ के सिर पर ही डाली जाये न। बड़े के सिर पर न डाले तो किसके सिर पर डाले? बड़े में ... बहुत पड़ते हैं। समझ में आया?

तारणस्वामी तो जैन के परम वस्तु का स्वरूप समझकर कहते हैं। उनकी दूसरे के साथ तुलना नहीं होती। मूर्ति का नहीं कहा और दूसरे ने मूर्ति को कहा, इसलिए अध्यात्म हो गया, ऐसा है नहीं। समझ में आया? अनन्ता-अनन्त पदार्थों का परम गम्भीर उपदेश है। वापस अनन्त अर्थात् परम गम्भीर, ऐसा लिया। महागम्भीर उपदेश। एक-एक द्रव्य। आहाहा! एक-एक परमाणु, जिसमें अनन्त गुण और एक गुण की एक समय की एक पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय। भाई पूछते थे न, द्रव्य-गुण-पर्याय? द्रव्य-गुण-पर्याय का प्रश्न नहीं था तुम्हारा? द्रव्य-गुण-पर्याय का प्रश्न। देखो, यहाँ कहते हैं तारणस्वामी कि अनन्ता-अनन्त पदार्थ अनादि-अनन्त हैं और एक-एक पदार्थ में अनन्ता-अनन्त गुण हैं और एक गुण की अनन्त-अनन्त त्रिकाल पर्याय है। डेरैयाजी! जवाबदारी बहुत है, हों! मानने में जरा। सुना नहीं, क्या कहा?

और '**विमल दिट्ठि चे देइ अषयं च**' निर्मल क्षायिक समकित की प्राप्ति करे। देखो, भगवान के उपदेश में... यहाँ तो क्षायिक की ही बात की, भाई! एकदम क्षायिक। जैसे कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? मोहक्षयं। वह शैली ली है। क्षायिक समकित प्राप्त कराते हैं। भगवान के उपदेश में... शुद्ध उपदेश उसे कहते हैं चिदानन्द पूर्णानन्द आत्मा अखण्ड अनन्तगुण का पिण्ड प्रभु, निर्विकल्प, उसकी दृष्टि करो, क्षायिक समकित हो जायेगा। और क्षायिक समकित केवलज्ञान को प्राप्त करायेगा। उस क्षायिक समकित से केवलज्ञान होगा। वापस गिरने का नहीं है। ऐसे भगवान सर्वज्ञ के उपदेश को शुद्ध उपदेश कहते हैं। तुम्हारे गिर जायेगा और फिर ऐसा होगा। अरे! चल-चल। देखो, यह दृष्टान्त अपने तो लेना है न? १२वीं गाथा।

परम देव सुभावं, अन्मोयं देइ न्याय सहकारं।
न्यानेन न्यान व्रिधं, जं श्रुति विध्रंति मच्छ अंडानं ॥१२॥

देखो, यह दृष्टान्त नया है, हों! गाँव में चलता होगा। यहाँ तो ऐसा चला नहीं। क्या कहते हैं, देखो, **परम देव (अरिहन्त) के स्वभाव का...** स्वभाव ऐसा है। '**परम देव सुभावं**' ऐसा शब्द पड़ा है न? परमदेव अरिहन्त का स्वभाव ऐसा है कि ऐसा उपदेश में आना चाहिए कि भगवान का स्वभाव यह है कि '**अन्मोयं देइ न्याय सहकारं।**' परम आनन्दकारी मूर्ति सहकारी ज्ञान को देता है। परम आनन्दरूपी मुक्ति, उसका साथ देनेवाला ज्ञान, ऐसा उपदेश भगवान करते हैं। परम आनन्द आत्मा में है, उसका ज्ञान करो, ऐसा उपदेश भगवान करते हैं। तब **ज्ञान से ज्ञान बढ़ता है...** देखो, क्या? शास्त्र पढ़ने से नहीं, बाहर से नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है।

'**न्यानेन न्यान व्रिधं**' जो अपना स्वरूप शुद्ध सम्यक् चैतन्यदर्शन हुआ, सम्यग्दर्शन तो जिस ज्ञान में स्वज्ञेय का भान हुआ, वह सम्यग्ज्ञान ज्ञान को बढ़ाता है। ज्ञान से ज्ञान बढ़ता जाता है। जैसे दूज का चन्द्रमा, दूज का चन्द्रमा। दूज का चन्द्रमा पूर्णिमा को लाता ही है। उसी प्रकार देखो, '**न्यानेन न्यान**' बढ़ता है। देखो, है न? '**न्यानेन न्यान व्रिधं**' **ज्ञान से ज्ञान (स्वयं) बढ़ता है...** सम्यक् चैतन्य का शुद्धस्वरूप, उसकी दृष्टि सम्यक् हुई, ज्ञान स्वयं उसमें बढ़ता है। दृष्टान्त देते हैं। देखो, तारणस्वामी दृष्टान्त देते हैं। '**जं श्रुति विध्रंति मच्छ अंडानं।' जैसे—मछली अपने अण्डों की ही सूरत रखती है तो वह अपने आप बढ़ते हैं,...** रेत में दबाती है न। दृष्टान्त दिया है देखो, **अर्हंत भगवान के धर्मोपदेश द्वारा भव्य जीव को आत्मा-अनात्मा का भेदविज्ञान पैदा होता है। जिसके प्रताप से आत्मा का अनुभव ऐसा-ऐसा ... जाता है।** यह तो साधारण अर्थ किया है। अंकुर का काम करता है। अंकुर पैदा होते हैं न, फिर वृक्ष होता है। वह आत्मज्ञान के प्रभाव से ज्ञान बढ़ता जाता है।

जैसे—दूज का चन्द्रमा नित्य बढ़ते-बढ़ते पूर्णमासी का चन्द्रमा हो जाता है, वैसे यही ज्ञान केवलज्ञानमय हो जाता है। वह अपना ज्ञान करते... करते... करते... अन्दर में ज्ञायक को एकाकार करते-करते ज्ञान केवलज्ञान हो जाता है। समझ में आया? व्यवहारिक ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान, वह तो व्यवहारिक ज्ञान, ऐसा कहते हैं।

आहाहा! सेठी! शास्त्रज्ञान भी ग्यारह अंग और नौ पूर्व अनन्त बार पढ़ गया। परन्तु अपना ज्ञान चिदानन्दस्वरूप स्वसंवेदनज्ञान। ज्ञान से ज्ञान का वेदन करके जानना, वही सम्यग्दृष्टि का ज्ञान, ज्ञान को बढ़ाता है, बस! क्रम-क्रम से दूज होकर। दूज-दूज। दूज बढ़कर पूर्णिमा हो जाती है। उसी प्रकार यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि अपना स्वरूप अन्दर में सर्वज्ञस्वभाव पड़ा है। लो और यह याद आया। कहाँ है?

जैसे—मछली अपने अण्डों की ही सूरत रखती है तो वह अपने आप बढ़ते हैं,... देखो, क्या कहते हैं? वह मछली के अण्डे का दृष्टान्त दिया कि अण्डे के ऊपर उसका लक्ष्य रहा करता है। मछली का लक्ष्य वहाँ ही रहा करता है। उससे वे बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का अपने ज्ञानस्वरूप में बारम्बार लक्ष्य रहता है। लक्ष्य करते-करते केवलज्ञान हो जाता है। सर्वज्ञस्वभाव है न वहाँ। इसके बाद की गाथा है न! यह एक है न। कछुए का दृष्टान्त कहाँ आया? श्रावकाचार। कहाँ आया? यह नया दृष्टान्त है, हों! कछुआ। यह श्रावकाचार में दृष्टान्त दिया है। उसके पहले ऐसा कहा कि ... अनेक पाठ पठनं। समझ में आया? अनेक पाठ का पढ़ना। शास्त्र का... नहीं वह शास्त्र। समझ में आया? 'अनेक पाठ पठनं' और 'अनेक क्रिया संजुतम' दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा कर-करके, बारह महीने के अपवास ऐसे करे, ऐसा खाना, ऐसा पीया, ऐसा लिया और ऐसा दिया, ऐसे अनेक प्रकार से व्यवहार क्रिया को पालना, अनेक प्रकार दान, देखो! शब्द पड़ा है। अनेकधा। क्या अनेकधा? अनेक प्रकार का दान। एक नहीं, बहुत दान देता है। उसमें दो... उसमें दो... उसमें दो... सबमें दो। अनेकधा। वृथा दान है तेरा। दर्शन शुद्धं न जानंती। कहो! यह तारणस्वामी कहते हैं, निकालो देखो। तारण समाज को मान्य करना पड़ेगा या नहीं? क्या? अनेक दान देते हैं। निरर्थक है। यदि शुद्ध सम्यग्दर्शन का अनुभव न किया जाये तो।

भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्द पूर्ण... पुण्य पर पनौती पड़ी है। डेरैयाजी ऐसा कहते हैं न। पुण्य की तो दुर्दशा हुई। यहाँ तारणस्वामी भी दुर्दशा करते हैं। देखो, समझ में आया? होता है, बात होती है, अशुभ से बचने को शुभ आता है, परन्तु उसकी धर्म के अन्दर कोई कीमत नहीं है। समझ में आया? धर्म तो अन्दर निर्विकल्प शुद्ध आनन्द की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता और वीतरागी परिणाम, वही मोक्षमार्ग है। दूसरा

मोक्षमार्ग दो प्रकार के हैं और तीन प्रकार का है—ऐसा तीन काल में नहीं है। उपदेश में, वीतराग के मार्ग में ऐसा नहीं आया। अज्ञानी ऐसी कल्पना करे तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? चलती गाथा।

दर्शनं यस्य हृदि दृष्टं, सुयं ज्ञान उत्पाद्यते।
कमठी दृष्टि यथा अंडं, स्वयं वर्धति यं बुधै॥४००॥

४०० गाथा है श्रावकाचार की। देखो, श्रावक को भी कहते हैं कि तेरा ज्ञान भी अन्दर से बढ़ता है। दृष्टि स्वभाव शुद्ध कर तो ज्ञान उससे बढ़ता है। तेरी दृष्टि बारम्बार ज्ञान में जाना चाहिए। **जिसके मन में सम्यग्दर्शन विद्यमान है। 'हृदि'** शब्द पड़ा है न? अर्थात् मन लिया है। मन नहीं, है तो आत्मा में। उसका हृदय अर्थात् आत्मा में। **'दर्शनं यस्य हृदि'** इसलिए अर्थ में मन लिया। परन्तु **'हृदि'** का अर्थ मन नहीं। अन्दर आत्मा में शुद्ध अखण्ड रागरहित, पुण्यरहित, पापरहित हो, उसे ज्ञेय बनाकर अपने स्वभाव सन्मुख की दृष्टि का भान हुआ, **'दृष्टं'** विद्यमान है। **'सुयं ज्ञान उत्पाद्यते।'** उसे श्रुतज्ञान बढ़ता जाता है। देखो, बिना पढ़े। उसमें लिखा है। ... क्या कहते हैं? ऐसा कि समकिती साधु अभ्यास करके बारह अंग का पाठी हो जाता है। बारह अंग का पाठी हो जाता है न? चौदह पूर्व का... बारह अंग, चौदह पूर्व। समझ में आया? वह तो अन्दर में पड़ा है सर्वज्ञस्वभाव एक समय में भगवान आत्मा पूर्णानन्द एक-एक आत्मा सर्वज्ञस्वभाव, सर्वज्ञस्वभावी है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि **'सुयं ज्ञान उत्पाद्यते।'** उसे श्रुतज्ञान बढ़ता जाता है। भावश्रुतज्ञान। चिदानन्द भगवान अखण्डानन्द ज्ञानमूर्ति प्रभु के प्रकाश के ऊपर दृष्टि पड़ने से शुद्ध सम्यग्दर्शन हुआ तो ज्ञान का प्रकाश बिना पढ़े होता जाता है, ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! आहाहा! यह पण्डित पढ़-पढ़कर पढ़े और विवेक का भान नहीं कि क्या वस्तु है? समझ में आया? क्या कहा, नहीं कहा वहाँ? 'पंड्या पांडे पांडे फोतरा खांडे' छिलके कूटता है, कहते हैं। फोतरा समझते हो? छिलका। छिलका होता है न? छिलका कूटकर अनाज निकले। धूल में भी नहीं (निकले)। चैतन्य एक समय में पूर्ण परमात्मा पूर्णानन्द भगवान जिसमें सर्वज्ञपद पड़ा है, ऐसी जिसे दृष्टि हुई नहीं, उसका ज्ञान बढ़ता

नहीं, ज्ञान होता नहीं। ज्ञानी को तो अनेक प्रकार का श्रुतज्ञान बढ़ता ही जाता है।

'**कमठी दृष्टि यथा अंडं, स्वयं वर्धति यं बुधै।**' जैसे कछुए की दृष्टि से अण्डा स्वयं बढ़ता है। यह अपने लिये नया दृष्टान्त है। ये कछुए का अण्डा होता है न अण्डा? तो कहते हैं कि उस अण्डे पर उसकी बारम्बार दृष्टि जाती है। दृष्टि, हों! पक्षी उसके बच्चे को पंख से पोषता है। इसकी दृष्टि उसके ऊपर पड़ती है तो बढ़ता ही जाता है। कछुए का बच्चा बढ़ता ही जाता है। समझ में आया? **जैसे—कछुए की दृष्टि से अण्डा स्वयं बढ़ता है। यह बुद्धिमानों का...** देखो, बुद्ध है न बुद्धि? '**स्वयं वर्धति यं बुधै**' '**बुधै**' शब्द पड़ा है न अन्त में? इसी प्रकार तत्त्वज्ञानी सम्यक् चैतन्यमूर्ति का निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान हुए, ऐसे ज्ञान में बारम्बार स्वसन्मुख का झुकाव होता है तो ज्ञान बढ़ता ही जाता है। बिना पढ़े, बिना वाँचे। पढ़े हुए-गुने हुए कहते हैं न? पढ़े हुए-गुने हुए। बाहर का पढ़ा हुआ-गुना हुआ। पढ़ा-गुना क्या है? चैतन्य में सब भरा है। ऐसा परिपूर्ण भगवान, देखो! ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे शुद्ध उपदेश में ऐसा आना चाहिए। बाहर के लक्ष्य से विकल्प से बहुत ज्ञान प्रगट होता है, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। भाई! ऐसा कि बाहर के लक्ष्य से पठन करते-करते ज्ञान बढ़ेगा, यह उपदेश शुद्ध नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दर्शन के होने से जितना शास्त्रज्ञान होता है, वह सम्यग्ज्ञान नाम पाता है। सब ज्ञान। थोड़े अभ्यास से शुद्धात्मा के अनुभव के प्रताप से उसका शास्त्रज्ञान दिन-दिन बढ़ता जाता है। श्रुतज्ञान की बात है न! श्रुतज्ञान। वह आत्मा को पकड़ने की ओर का ज्ञान बढ़ता जाता है। बस, दूसरी बाहर की कोई धारणा बढ़ती है, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। देखो, महेन्द्रभाई! यह ज्ञान बढ़ता जाता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक है न तिर्यंच सम्यग्दृष्टि, उसका अन्तर में निर्मलज्ञान, शुद्ध ज्ञान बढ़ता जाता है। शुद्ध ज्ञान, हों! भावश्रुतज्ञान अन्तर में पकड़ने का बढ़ता जाता है। समझ में आया? समकिती असंख्य पड़े हैं ढाई द्वीप के बाहर। श्रावक समकिती चौथे गुणस्थानवाले, पाँचवें गुणस्थानवाले तिर्यंच।

तो कहते हैं कि **उसका अन्तर अनुभव के प्रताप...** बढ़ता। **जैसे—कछुए का**

अण्डा होता है। अण्डा कछुए की दृष्टि से बढ़ता जाता है। इसका कारण कि कछुए का निरन्तर ध्यान अण्डे की तरफ रहता है। कारण दिया। **उसके इस संकल्प के निमित्त से अण्डा बढ़ता जाता है।** यह तो निमित्त है, हों! उपादान तो उसकी पुष्टि है। समझ में आया? **उसी तरह समकिती का ध्यान निरन्तर तत्त्व अभ्यास में रहता है।** सम्यग्दृष्टि का निरन्तर तत्त्व अभ्यास ज्ञायकभाव अन्दर में बारम्बार क्या ... उसकी गाढ़ रुचि आत्मिक चर्चा के ऊपर रहती है। आत्मिक चर्चा के ऊपर गाढ़ रुचि है। विकथा की रुचि उड़ गयी है। शास्त्रज्ञान दिन-दिन ... अति रुचि से शास्त्र को देखना, वाँचना, उसका मन एकाग्र... ध्यान। **समकिती साधु बिना अभ्यास के द्वादशांग पाठी हो जाता है।** क्या बारह अंग का ज्ञान पढ़ने से आता है? बारह अंग। गौतम गणधर। एक अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग। भगवान की वाणी खिरी जहाँ, विपुलाचल पर्वत राजगृही। है न पर्वत? सुनी। एकदम अन्तर्मुहूर्त में—दो घड़ी में बारह अंग का ज्ञान प्रगट हो गया। चार ज्ञान। क्या पढ़े और क्या लिखे। अन्तर भगवान...

हम समुद्र का दृष्टान्त देते हैं न! समुद्र है न, वह मध्यबिन्दु में। जब मध्यबिन्दु में से ज्वार आता है। भरती को क्या कहते हैं? बाढ़। बाढ़ (ज्वार) कहते हैं न? तो ज्वार आवे तो ११८ डिग्री बाहर की धूप हो। ११८ डिग्री धूप समझे? परन्तु ज्वार के काल में उसके ज्वार को रोकने में कोई समर्थ नहीं है। मध्यबिन्दु से समुद्र उछले। मध्यबिन्दु से ज्वार (उठे)। किनारे आता है न ज्वार? ११८ डिग्री हो। मध्यबिन्दु से ज्वार उछलता आता हो, उसे रोकने में कोई समर्थ नहीं है और जिसकी दृष्टि विपरीत है, उसे २५-५० इंच वर्षा जैसे समुद्र में पड़े और भाटा का काल हो तो १०० नदियों का पानी और हजार इंच का पानी ऊपर से लावे, तीन काल में ला सकता नहीं। भाटा के काल में ज्वार आ सकता नहीं।

इसी प्रकार जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व में पड़ी है, पुण्य-पाप की रुचि पड़ी है, अल्पज्ञपना, इतना ही मैं हूँ, निमित्त को लाना-छोड़ना ऐसा मेरा अधिकार है, ऐसी दृष्टि मिथ्यात्व है, उसे पढ़ना-वाँचना लाख बात करे तो उसके ज्ञान में तो भाटा ही है। ओट को क्या कहते हैं? भाटा। समझ में आया? और सम्यग्दृष्टि बाहर के शास्त्र न वाँचे, मन का विकल्प न लगावे, अन्तर में ज्ञान की बारम्बार दृष्टि लगाता है तो अन्तर में से ज्ञान

का ज्वार आता है। मन, इन्द्रिय भले मन्द हो जाये। मन इन्द्रिय मन्द हो जाये, पठन-पाठन बन्द हो जाये, आँख भी मन्द हो जाये। अन्तर की दृष्टि शुद्ध अखण्ड आनन्द पर पड़ी है तो ज्ञान का पार उसमें हो जाता है। ऐसा है या नहीं? डेरैयाजी! ऐसा है या नहीं? देखो, सामने रखना पड़े। तुम होशियार व्यक्ति हो। विचारक है न। उसमें क्या है, उसका ध्यान रखना पड़ेगा या नहीं? समझ में आया?

सब समकिती महिमा तब समकित के प्रभाव से केवलज्ञान हो जाता है, तो श्रुतज्ञान के लाभ में विशेष कठिनाई नहीं। जहाँ केवलज्ञान होता है, वहाँ फिर श्रुतज्ञान की क्या बात करना? भावश्रुतज्ञान से तो अपनी ताकत प्रगट हो जाती है। कहो, समझ में आया? ४०१ हुई न? यह ४०१ मोक्षमार्ग की, हों! उसमें है। कहा न? और देखो! फिर एक गाथा ली है ४०२ में। यह मछली का। अपने मछली आ गयी न? यहाँ आ गयी न? परन्तु वह दृष्टान्त आ गया न? उसमें बात आ गयी। उपदेशसार में... उसमें यह आ गयी।

दर्शनं हीन तपं कृत्वा, व्रत संजम पठं क्रिया।
चपलता हिंडि संसारे, जह जल सरनि ताल कीटऊ॥४०२॥

... होता है न? इसका मैल पानी में बहुत होता है। कहते हैं '**दर्शनं हीन तपं कृत्वा**' जिसे सर्वज्ञ परमात्मा जैसा आत्मा कहते हैं, ऐसे आत्मा की प्रतीति—दर्शन—श्रद्धा नहीं, भान नहीं, वह '**तपं कृत्वा**' तप करके मर जाये, सूख जाये बारह महीने के अपवास करके जंगल में योगी होकर नग्न रहकर। समझ में आया? भगवान सर्वज्ञदेव कहते हैं, ऐसे एक आत्मा में अनन्त गुण हैं, ऐसे अनन्त पदार्थ हैं, ऐसी अन्तर में श्रद्धा, अपनी श्रद्धासहित पर की व्यवहार श्रद्धा भी नहीं, वह '**दर्शनं हीन तपं कृत्वा**' बाहर जंगल में रहता है, नग्न रहता है, कोई वस्त्र भी नहीं रखता, ऐसा खाता है, जड़ी-बूटी खाता है, बहुत ध्यान में करता है। मूढ़ है। आत्मा जैसा है, वैसी श्रद्धा का ज्ञान नहीं, अपना साक्षात्कार क्या, उसकी खबर नहीं।

'**व्रत संजम पठं क्रिया।**' देखो! उसके व्रत, संयम। '**पठं**' '**पठं**' अर्थात् पठन की क्रिया सब पालता है। '**चपलता हिंडि संसारे**' वह तो सब संसार है। चपलता अर्थात्

कषायभाव का विकार अन्तर में है। चपल अर्थात् अस्थिरता। विकार मिथ्यादृष्टि को विकार ही पड़ा है अन्दर में। तब उसे '**हिंडि संसारे**' संसार में '**हिंडि**' देखो भ्रमण करता है। गुजराती में नहीं कहते? चलो हेंडो हेंडो। यहाँ गुजराती में हींडे कहते हैं। चलो हेंडो। हेंडो अर्थात् चलो। ऐसा। गुजराती की भाषा है। चलो। यहाँ गुजराती में हेंडो कहते हैं। ऐसा कहते हैं '**हिंडि संसारे**' संसार में भ्रमण करता है। हिंडन करता है, परिभ्रमण करता है। गुजरात का है या नहीं? यह अहमदाबाद में कहते हैं या नहीं? हेंडो... हेंडो। हेंडो बस यह। हेंडो भाई हेंडो। हेंडो अर्थात् चलो। इसी प्रकार यह चलो संसार में। '**हिंडि**' संसार में चलता है।

'**जह जल सरनि ताल कीटऊ**' ताड़ का दृष्टान्त दिया है। ताड़ के वृक्ष का मैल। वृक्ष होता है न, उसका मैल होता है न। पानी भटककर मैल चला जाता है पानी में दूर-दूर। इसी प्रकार अज्ञानी संसार में दूर-दूर भटकता है। और चलते-चलते तो आगे बहुत कहा न! निगोदं गच्छई। तारणस्वामी तो बारम्बार निगोदं गच्छई (कहते हैं)। मिथ्यादृष्टि तेरी, चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु कौन है, उसकी प्रतीति-ज्ञान नहीं और अनन्त-अनन्त पदार्थ भगवान ने कहे, उसकी श्रद्धा तुझे नहीं, बस! '**हिंडि**' चार गति में भटकता है। समझ में आया? हो गया? कितनी गाथा हुई यह? यह तो है तारणस्वामी की श्रावकाचार की। बराबर।

देखो, क्या कहा? ४९३ गाथा चलती है कि—

एकं जिनं सरूवं, सुयं षिपनं च कम्म बंधानं।
अन्त चतुस्टय सहियं, ममल सहावेन सिद्धि संपत्तं॥४९३॥

ओहो! मोक्षमार्ग में क्या लिया? कि सिद्धों का एक ही प्रकार का जिनस्वभाव है। इसी प्रकार मेरा भी एक ही प्रकार का जिन वीतरागस्वभाव है, ऐसी दृष्टि करना, इसका नाम मोक्षमार्ग है। सिद्ध में और मुझमें कोई अन्तर नहीं। पर्याय में अन्तर है, उसकी यहाँ बात नहीं। यहाँ यह कहना है न? '**एकं जिनं सरूवं,**' वीतराग जैसा एक स्वरूप है, वैसा मेरा भी एक स्वरूप अभेद शुद्ध चिदानन्द है। और जीतनेवाला है। वह तो अज्ञान और राग है ही नहीं सिद्ध में। उसी प्रकार मुझमें भी अज्ञान और राग है नहीं।

ऐसा अन्तर स्वरूप प्रगट करना और '**सुयं षिपनं च कम्म बंधानं।**' उसने स्वयं कर्मबन्धन को काट दिया है। सिद्ध ने तो अपने स्वभाव के आश्रय से कर्म का नाश किया है। ऐसा मोक्षमार्ग का उपदेश ऐसा करना कि तेरे स्वभाव के आश्रय से ही विकार और कर्म का नाश होगा। किसी दूसरे कारण से कर्म का नाश होगा नहीं। उसका नाम मोक्षमार्ग कहा जाता है। समझ में आया?

'**अन्त चतुस्टय सहियं**' भगवान अनन्त ज्ञानादि चतुष्टयसहित है। भगवान का ज्ञान पूर्ण प्रगट हो गया है। पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य। मैं भी पूर्ण अनन्त चतुष्टय से अन्दर भरपूर हूँ। यह मोक्षमार्ग की बात चलती है। समझ में आया? जैसे सिद्ध में प्रगट हुए हैं, ऐसे अनन्त चतुष्टय मेरे अन्दर परिपूर्ण है। ऐसी अन्तर्दृष्टि करना और उसका ज्ञान करके लीन होना, इसका नाम मोक्षमार्ग भगवान कहते हैं। ऐसा तारणस्वामी उपदेश में कहते हैं कि ऐसा उपदेश ही सच्चा है, दूसरे का उपदेश सच्चा नहीं। कहो, समझ में आया? यह तो खबर नहीं। तुम भी सच्चे और हम भी सच्चे। चलो भाई! सेठ! क्या करे भाई! सबको साथ में रखो, सबको इकट्ठा करो। तुम हमारी महिमा करो, हम तुम्हारी करते हैं। समझ में आया? यह आया है, कहीं आया है। जनरंजन आया है कहीं। सब इकट्ठे हों। क्या कहते हैं? यह कुछ लिया है न भाई! जनरंजन का कहीं लिया है। जनरंजन की बात कहीं ली है। कहीं लिया है कि अज्ञानी लोक को अनुकूल कैसे रहे, उसके लिये प्रयत्न करता है। उपदेश ऐसा देना कि सब लोक रंजित रहे। मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। उसमें बहुत कहा है। उसे तो जनरंजन करना है। किसमें? ९७ गाथा। लाओ भाई। देखो, उपदेश का सार। यहाँ है। ९७। ९० और ७। यह ९७ है, देखो! आहाहा! इसके पहले ९६ गाथा लो, देखो! देखो, ९६ में मूल तो है। यह ९६ कहनी थी, हों! देखो, ९६ गाथा है न उपदेश(शुद्ध)सार की?

रागं च राग सहियं, जनरंजन विकहा भाव संजुत्तं।
जिन द्रोही जिन उत्तं, राग सहावेन दुग्गए पत्तं॥९६॥

इस प्रकार के मिथ्यारागसहित ऐसा राग होता है कि **जहाँ लोगों को प्रसन्न करने के लिये...** विकथा कही जाती है। उस विकथा का अर्थ? शुभराग से धर्म होता है, यह कथा विकथा है।

मुमुक्षु : लोगों को प्रसन्न करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब लोग प्रसन्न हों। सबको खड़ा रखना। इन सेठियों को क्या करना? शोभालालजी को क्या करना? उन्हें भी थोड़ा प्रसन्न रखना। यह दान में भी तुम्हारा थोड़ा भाग है। चलो भाई आगे। शोभालालजी! कहते हैं, देखो, तारणस्वामी कहते हैं कि '**जनरंजन विकहा भाव**' विकथा का अर्थ? सम्यग्दर्शन का नाश करनेवाली कथा। निमित्त से मुझे लाभ होता है, राग से मुझे धर्म होता है—ऐसी कथा करना, उसे यहाँ विकथा कहते हैं। धर्मकथा नहीं। कैसी है विकथा? देखो, '**जनरंजन**' '**जिन द्रोही**' जैनधर्म के द्रोही होते हैं। वीतरागभाव के द्रोही होते हैं। भगवान सर्वज्ञ के शुद्ध उपदेश में तो वीतरागभाव की दृष्टि आयी है। अपना स्वभाव वीतराग विज्ञानघन है, उसकी दृष्टि करो, उसका ज्ञान करो, उसमें लीन होओ, ऐसा उपदेश में आता है। दूसरा उपदेश जनरंजन (करावे) या बहुत लोग इकट्ठे हों और हमारी कीर्ति बढ़ जायेगी, उसकी भी हमें सहायता मिलेगी। जनरंजन करता है। सेठ! जरा कठिन बात है, हों!

'**जिन द्रोही जिन उत्तं**' क्या कहते हैं? यह जिनधर्म के द्रोही होते हैं। ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है। देखो! '**जिन द्रोही जिन उत्तं**' स्वयं नहीं कहते। तारणस्वामी कहते हैं, मैं नहीं कहता, हों! जिन वीतराग त्रिलोकनाथ परमेश्वर सर्वज्ञदेव, वे जिनद्रोही कहते हैं। अहो! सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग, उससे विरुद्ध कहता है और उसे भी जनरंजन करने को भला कहते हैं और स्वयं को भी उसमें भले में खपाना है, ऐसा जनरंजन करनेवाला, वीतराग कहते हैं कि वह हमारा द्रोही—वैरी है। वरैयाजी! समझ में आया बड़े भाई! समझ में आया? यहाँ जिनमार्ग में गड़बड़ नहीं चलती, ऐसा कहते हैं। देखो, तारणस्वामी इस ९६ गाथा में कहते हैं। '**जिन द्रोही जिन उत्तं, राग सहावेन दुग्गए पत्तं।**' देखो, ऐसा मिथ्यात्व का राग है। रागस्वभाव से दुर्गति में जाता है। भले कोई भवनपतिदेव आदि में जाये, पुण्य किया हो न, परन्तु वह दुर्गति है। उसमें कोई आत्मा की सुगति है नहीं। समझ में आया? वह जनरंजन। पश्चात् भी जनरंजन आया न? ९७।

विन्यान न्यान रहियं, राग सहावेन पज्जाव पर दिट्ठं।
न्यान सहावं विरयं, जनरंजन राग नरय वासम्मि॥९७॥

जिसे भेदविज्ञान—राग से मैं भिन्न हूँ, पर अनन्त द्रव्य से मैं भिन्न हूँ, मेरी वस्तु में पर का कोई सम्बन्ध नहीं—ऐसा भेदज्ञान नहीं और रागमय स्वभाव से परपर्याय में रत रहता है। राग और पर में लीन रहता है। वही ठीक है... वही ठीक है... वही ठीक है। **वह ज्ञानस्वभाव से विरक्त है,...** उसे लोगों को प्रसन्न करने का रागभाव रहता है। दुनिया कैसे प्रसन्न हो? हमारी प्रशंसा कैसे करे? जिसका फल नरकवास है। '**नरय वासम्मि**' देखो, समझ में आया? तो उपदेश में जनरंजन नहीं करना। उपदेश तो जैसा वीतराग का रागभावरहित अपना स्वरूप निर्विकल्प, उसकी दृष्टि, ज्ञान, रमणता करो। वही मार्ग भगवान ने कहा। दूसरा मार्ग है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १०, शुक्रवार, दिनांक - १३-०९-१९६३
गाथा-११७ से ११९, ४९३-४९४, प्रवचन-२

यह उपदेशशुद्धसार, तारणस्वामी रचित। इसमें मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है। देखो, ४९३ (गाथा) थोड़ी बाकी थी।

एकं जिनं सरूवं, सुयं षिपनं च कम्म बंधानं।
अन्त चतुस्टय सहियं, ममल सहावेन सिद्धि संपत्तं॥४९३॥

४९३ गाथा। उसे नहीं अभी बराबर व्यवस्थित। मोक्षमार्ग का स्वरूप। सिद्धों का एक ही प्रकार का जिनस्वभाव है। वह सिद्ध समान मेरा ही स्वरूप एक प्रकार से शुद्ध अरागी-वीतरागी स्वरूप है। वही मेरा स्वभाव राग-द्वेष को जीतनेवाला है, ऐसा अन्तर साधन करना चाहिए। ऐसा उपदेश है न? उपदेशशुद्धसार। उपदेश में यह बात मुख्य आनी चाहिए। मेरा स्वरूप सिद्ध समान सर्वज्ञ है। वह सर्वज्ञ है न। अपने कहाँ आया सर्वज्ञ का? ज्ञानसमुच्चय? आया, देखो! क्या कहते हैं? कि सिद्ध समान मेरा स्वरूप है, ऐसी निश्चय की अन्तर्दृष्टि, ज्ञान, रमणता करना, इसका नाम निश्चय सत्य मोक्षमार्ग है। ऐसा उपदेश करना, उसका नाम उपेदशशुद्धसार है। सेठ! समझ में आया? ऐसा उपदेश करना। अब इसमें आया देखो। ज्ञानसमुच्चय (सार) दूसरा ग्रन्थ है न? देखो, ११४ गाथा चली है। उसमें क्या कहते हैं?

समयं सर्वन्य सुद्धं, न सार्धं भव्यलोकयं।
अन्यान व्रत क्रिया जेन, समय मिथ्या समाचरेत्॥११४॥

समय शब्द से आत्मा। **सर्वज्ञ स्वरूप है...** देखो, यह सिद्ध समान यहाँ कहा न? मेरा आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञ—ज्ञ-स्वरूप, ज्ञ-स्वरूप / सर्वज्ञस्वरूप मैं हूँ। सर्वज्ञ की दशा देव की तो पूर्ण पर्याय में प्रगट हुई है, परन्तु मैं सर्वज्ञस्वभाव हूँ। मेरा स्वभाव भी सर्वज्ञ है। तीन काल—तीन लोक को अपने स्वभाव से जाने, ऐसा मैं आत्मा हूँ। ऐसा पहले निर्णय करना, इसका नाम ज्ञान का सार है। यह ज्ञानसमुच्चयसार है न। समझ में आया? एक-एक आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। डेरैयाजी! निगोद का आत्मा एक शरीर में अनन्त, वह भी सर्वज्ञस्वभावी ही है। सर्वज्ञ का अर्थ? कि अकेला

ज्ञानपुंज। ज्ञान किसे न जाने? ज्ञान स्व-पर पूर्ण तीन काल—तीन लोक को अनन्त पदार्थसहित अनन्त पर्याय स्वरूप को जाने, ऐसा मेरा स्वरूप है, ऐसा पहले उसे निर्णय करना चाहिए। समझ में आया?

और '**सुद्धं**' **राग-द्वेषादि व कर्मादि रहित शुद्ध है...** यह नास्ति से बात की। अस्ति से यह कहा। अस्ति से क्या कहा? कि '**समयं सर्वन्य सुद्धं**' समय शब्द से आत्मा और सर्वज्ञ। और शुद्ध, यह नास्ति से। राग-द्वेष, पुण्य-पाप विकल्प से रहित ऐसा मेरा आत्मा है, ऐसा अन्तर में निर्णय, निश्चय, ज्ञान, रमणता करना, इसका नाम निश्चय सत्य मोक्षमार्ग कहा जाता है। कहो, समझ में आया? व्यवहार बीच में आता है। यह कहेंगे। प्रथमानुयोग, चार अनुयोग का अभ्यास करना, वह सब आता है, परन्तु उसमें अन्तर का स्वभाव ज्ञान से ज्ञान बढ़ता है। ऐसा अन्तर में निश्चय करके शुद्ध अर्थात् राग-द्वेषादि भावकर्म और कर्म आदि जड़ कर्म से मैं रहित हूँ।

'**न सार्धं भव्यलोकयं**' **भव्यजीव इसी का साधन करते हैं...** अभव्य इसका साधन नहीं कर सकते। तो भव्य-अभव्य दो जीव भी सिद्ध किये। डेरैयाजी! दो प्रकार के जीव सिद्ध किये। तारणस्वामी कहते हैं, भव-अभव्य दो प्रकार के जीव हैं। भव्य भी अनन्त जीव हैं और अभव्य भी अनन्त हैं। सिद्ध किया या नहीं? भव्य शब्द कहने से अभव्य सिद्ध हो गया। अस्ति कहने से नास्ति दूसरी वस्तु सिद्ध हो जाती है। '**न सार्धं भव्यलोकयं**' जो कोई अपना स्वरूप प्राप्त करनेयोग्य है, वही अपना स्वरूप साधता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानपुंज है यह। यह देखो। ६२ पृष्ठ पर अर्थ है।

भव्यजीव इसी का साधन करते हैं... और '**अन्यान व्रत क्रिया जेन**' ऐसा स्वभाव सर्वज्ञ प्रभु मैं ही सर्वज्ञ हूँ। मेरे ज्ञानसाधन से ही मैं सर्वज्ञ पर्याय में हो सकता हूँ। ऐसा निश्चय अनुभव किया, उससे विरुद्ध **जिसने आत्मज्ञान रहित...** ऐसा सर्वज्ञस्वभाव मेरा नहीं, मेरा सर्वज्ञस्वभाव नहीं, मैं तो रागवाला, अल्प ज्ञान और निमित्त के सम्बन्ध में जुड़नेवाला हूँ, ऐसा जिसका ज्ञान है, वह आत्मज्ञानरहित है। '**अन्यान व्रत क्रिया जेन**' यह सर्वज्ञ के सामने डाला अज्ञान। भाई! पण्डितजी! सर्वज्ञ के सामने अज्ञान डाला।

जिसका अपना स्वभाव एक समय में सर्वज्ञ शक्तिरूप से है, उससे पहले देखो। ११२ गाथा है न इसमें?

ध्रुव समयं च जानाति, अनेयं राग बन्धनं।
दुर्बुद्धि विषया होंति, समय मिथ्या स उच्यते॥११२॥

जिसमें निश्चय शुद्ध आत्मा का ज्ञान न हो... ध्रुव '**ध्रुव समयं**' समय शब्द से आत्मा। ध्रुव शुद्ध चिदानन्द सर्वज्ञस्वभावी एक समय में '**ध्रुव समयं च जानाति**' ऐसा **आत्मा का ज्ञान न हो...** और **अनेक राग भावों में बाँधनेवाली बातें हों...** शुभाशुभराग की अनेक बन्धन की बात है और '**दुर्बुद्धि विषया होंति**' **जिसमें मिथ्या बुद्धि से लिखे गये...** अज्ञानी ने कहे हुए। अज्ञानी ने राग-द्वेष से लाभ होता है, ऐसे आगम बनाये हैं, ऐसा आगम रचा। **गये विषय हों... 'समय मिथ्या स उच्यते' उसको मिथ्या आगम कहते हैं।** समझ में आया? जिसमें ध्रुव एक समय में सर्वज्ञस्वभावी एक-एक आत्मा हूँ, ऐसा जिसमें कथन नहीं। लखाण न? कथन। और उससे विरुद्ध जिसमें कथन है कि आत्मा अल्पज्ञ है। भाई! भगवान का तो दास ही है। कभी पूर्ण हो सकता नहीं। भगवान का सेवक ही सदा रहेगा। ऐसी जिसमें कथनशैली है, वे सब मिथ्या आगम हैं। समझ में आया? **'समय मिथ्या स उच्यते' उसको मिथ्या आगम कहते हैं।**

पश्चात् ११३।

समयं च सुध सार्धं च, असमय भावनं कृतं।
समय मिथ्या जिनं उक्तं, संसारे दुष बीर्जयं॥११३॥

'समयं' आगम वही यथार्थ है जो शुद्ध आत्मा की प्राप्ति का साधन बतावें,... साधन बतावे, यह तुम्हारी हिन्दी भाषा में है? बतावे हैं? यहाँ लिखा है इसमें। पाठ है या नहीं? '**समयं च सुध सार्धं**' जो आगम—शास्त्र अपने शुद्ध भगवान आत्मा की प्राप्ति का अन्तर निश्चय उपाय बतावे, वही आगम है। और जो '**असमय भावनं कृतं**' **शुद्धात्मा से विपरीत अशुद्ध आत्मा की...** अर्थात् राग की, अल्पज्ञता की, निमित्त मिलाने की—प्राप्ति की भावना जिसमें लिखी हो, **अशुद्ध आत्मा की व अनात्मा की भावना करावे वह... 'मिथ्या समय जिनं उक्तं'** वीतराग तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने उस

आगम को मिथ्या आगम कहा है। पहिचान करनी पड़ेगी या नहीं मिथ्या आगम क्या? सम्यक् आगम क्या? ऐसे के ऐसे बिना भान के चलना?

मुमुक्षु : करनी पड़ेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : करनी पड़ेगी? समझ में आया?

ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है... देखो, '**जिनं उक्तं**' तारणस्वामी कहते हैं, भाई! मैं अकेला नहीं कहता, त्रिलोकनाथ वीतरागदेव कहते हैं। उसके अनुसार मैं तो कहता हूँ, मैं मेरे घर की बात नहीं कहता। '**जिनं उक्तं**' परमेश्वर जैन वीतराग देवाधिदेव, ऐसे आगम को दु आगम, कु आगम कहते हैं। जिसमें राग से, पुण्य से, निमित्त से, संयोग से लाभ मनावे, ऐसा आगम भगवान का आगम नहीं है। वह तो कु आगम और दु आगम है। तो कु आगम और सम्यक् आगम की परीक्षा करनी पड़ेगी या नहीं?

'**संसारे दुष बीर्जयं**' **वह संसार में दुःखों के उत्पन्न करने का बीज कारण है।** कु आगम का ज्ञान, कुशास्त्र का ज्ञान, वह संसार में परिभ्रमण, निगोद का बीज है। समझ में आया? तो यहाँ कहा, '**अन्यान व्रत क्रिया जेन, समय मिथ्या समाचरेत्।**' **जिसने आत्मज्ञान रहित व्रत पाले,...** अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी आतमा माने बिना, सर्वज्ञस्वभावी आत्मा का ज्ञान हुए बिना अज्ञानी प्राणी **व्रत पाले, चारित्र पाला...** चारित्र शब्द से यह क्रिया। पाठ में है न! मूल चारित्र शब्द नहीं। पाठ में तो व्रत और क्रिया दो (लिखे हैं)। व्रत और क्रिया। वह रागादि की क्रिया करता है, बन्ध की। समझ में आया? **पाला है उसने... 'समय मिथ्या समाचरेत्' मिथ्या आत्मा का ही सेवन किया था।** मिथ्या आगम को ही जाना। उसने तो मिथ्या आगम को सेवन किया, आत्मा का सेवन किया नहीं। कहो, समझ में आया? देखो, अर्थ में भी जरा ठीक लिखा है।

यह आत्मा निश्चय से परमात्मा के समान सर्वज्ञ है तथा वीतराग है व आनन्दमयी है। ऐसा अपना स्वभाव नहीं जाना, नहीं पहिचाना, नहीं पहिचाना, नहीं दृष्टि की और न अनुभव किया और उससे विरुद्ध अज्ञानभाव से धर्म मान रखा है राग से और पुण्य से और निमित्त से और क्रियाकाण्ड से धर्म होगा—ऐसा जिस शास्त्र में लिखा हो, वह कुआगम है। महेन्द्रभाई! कु आगम है देखो। खबर नहीं अभी तो क्या कुआगम को

माननेवाले। यह सब आता है। २५ अनायत दोष है। छह अनायतन कहीं है। छह अनायतन है। उसमें आता है। कुदेव, कुदेव को माननेवाला; कुगुरु, कुगुरु को माननेवाला; कुशास्त्र, कुशास्त्र को माननेवालो। कहीं है सही। अब सब कहीं याद रहता है? किसी जगह लिखा है। छह अनायतन। ज्ञानसमुच्चयसार। पृष्ठ १८९। लो! आवे तब आवे न। पृष्ठ १८९। ज्ञानसमुच्चयसार है। देखो, गाथा १८९, हों! पृष्ठ १०७। देखो! यह अधिकार है ज्ञानसमुच्चय—सच्चा ज्ञान करनेवाला क्या करता है?

अनायतन षट्कस्चैव, कुदेवं कुदेव धारिनं।
कुसास्त्रं कुसास्त्रधारी च, कलिंगी कुलिंग धारिनं॥१८९॥

ज्ञानसमुच्चयसार दूसरी पुस्तक है। **छह अनायतन भी हैं...** अनायतन। आयतन नहीं, धर्म का स्थान नहीं। अनायतन—कुधर्म का स्थान है। क्या? **कुदेव और उनके माननेवाले...** अब कुदेव किसे कहना? सुदेव से विपरीत है, ऐसी पहिचान करनी पड़ेगी या नहीं? यह तो वह भी सच्चा और यह भी सच्चा। अभी तो बहुत चला है। कहो, शोभालालजी! '**कुदेवं कुदेव धारिनं**' देखो! कुशास्त्र और उसे माननेवाले। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो चार अनुयोग कहे। चार अनुयोग। उन अनुयोग की व्याख्या श्रावक अधिकार में—श्रावकाचार में है। चारों ही प्रकार के अनुयोग का अभ्यास करना चाहिए। प्रथमानुयोग जिसमें धर्मकथा की बात चलती है, उसका भी अभ्यास करना। प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, जिसमें देव और गुरु। श्रावक और मुनि के आचरण की बात हो। करणानुयोग, जिसमें सूक्ष्म परिणाम का अधिकार हो और द्रव्यानुयोग जिसमें छह द्रव्य, नौ पदार्थ, सात तत्त्व, पंचास्तिकाय ऐसे अधिकार (कहे हों), इन चारों अनुयोगों का श्रावक को अभ्यास करना चाहिए। समझ में आया? इनसे विरुद्ध है उनके माननेवाले।

और '**कुलिंगी**' कुगुरु। कुलिंगी अर्थात् गुरु नाम धराते हैं, परन्तु देव-गुरु-शास्त्र की यथार्थ श्रद्धा से विपरीत है। अन्तर वस्तु क्या है, परमानन्द सर्वज्ञस्वरूपी आत्मा मैं अकेला ही हूँ और मैं मेरे ज्ञान से स्वरूप का साधन करके सर्वज्ञ (पद) प्राप्त कर सकता हूँ। दूसरे किसी का आधार है नहीं। ऐसी जिसकी दृष्टि नहीं और उससे विरुद्ध है, वे

सब साधुपने का कुलिंग धारण करते हैं। द्रव्यलिंग नग्नपना हो, तो भी उसे कुलिंग कहा जाता है। शोभालालजी! कुलिंगी और कुलिंग को धारण करनेवाले। धारण करनेवाले का क्या अर्थ है? उसे माननेवाले। समझ में आया? **इनकी संगति न करनी चाहिए।** देखो! '**कुलिंगी कुलिंग धारिनं**' समझ में आया?

कुदेवं जिनं उक्तं, राग द्वेष असुध भावना।
मिथ्या माया संजुक्तं, कुन्यानं कुदेव जानेहि॥१९०॥

जिनेन्द्र '**जिनं उक्तं**' **जिनेन्द्र ने ऐसा कहा है कि कुदेव ये हैं, जिनमें राग-द्वेष तथा अशुद्ध संसार लीन भाव है...** विकार आदि **वे मिथ्यात्व व माया सहित हैं या ऐश्वर्य में मगन हैं...** क्या कहते हैं? '**मिथ्या माया संजुक्तं**' **मिथ्या ऐश्वर्य...** बाहर की विभूति, चमत्कार, चमक आदि में मग्न है। **मिथ्याज्ञान के धारी हैं, उनको कुदेव जाना चाहिए।** समझ में आया? तो यह अनायतन है, ऐसा जानकर छोड़ना चाहिए, ऐसा उपदेश में चलता है। समझ में आया?

यहाँ तो सर्वज्ञ स्वभावी चलता था न! यह कहते हैं, देखो, सिद्धों का स्वभाव है, ऐसा मेरा स्वभाव है। यह मोक्षमार्ग। और '**सुयं षिपनं च कम्म बंधानं**' शब्द है? '**सुयं**' अर्थात् स्वयं। स्वयं कर्म बन्धनों को मैंने काट डाला है। काट डालता हूँ, यह मोक्षमार्ग है। नाश किया, वह पूर्ण सिद्ध है। समझ में आया? परन्तु किसे? स्वयं बन्धनों को। क्रियाकाण्ड राग और निमित्त से नहीं। सर्वज्ञस्वभावी मैं आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य अनन्तगुण के पिण्डरूप मैं प्रभु आत्मा हूँ। उसके अन्तर साधन से शुद्ध उपयोग द्वारा सर्व कर्मबन्धन को काट डालता हूँ। उसका नाम मोक्षमार्ग कहा जाता है। और वह '**अन्त चतुस्टय सहियं**' भगवान अनन्त ज्ञानसहित पर्याय में है। मैं भी अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, (वीर्य आदि) चतुष्टयसहित त्रिकाल ध्रुव हूँ।

'**ममल सहावेन सिद्धि संपत्तं**' उन्होंने अपने शुद्ध उपयोग स्वभाव द्वारा सिद्धि प्राप्त की है। तो ऐसा करके मैं भी पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव से सहित, पंच महाव्रत का शुभराग बीच में मुनि को भी आता है, श्रावक को बारह व्रत का विकल्प आता है, आता है, परन्तु वह तो जानने की चीज़ रह गयी, साधने की चीज़ नहीं। समझ में

आया? साधना तो मेरा स्वरूप अन्तर में है शुद्ध उपयोग से स्वभाव की सिद्धि प्राप्त करता हूँ।

अब देखो, ४९४। जरा वीर्य की गति बताते हैं।

वीर्जं च सिद्ध सिद्धं, तारन तरनं च अन्मोय सहकारं।
हितमित परिनइ जुत्तं, कोमल परिनाम न्याय सहकारं॥४९४॥

क्या कहते हैं? मेरा वीर्य अथवा सिद्ध भगवान का वीर्य। सिद्ध भगवान ने अपने वीर्य से सिद्धि प्राप्त की है। '**सिद्ध सिद्धं**' अपने आत्मबल—स्वरूप के वीर्य की स्फुरणा से सिद्धि प्राप्त की है। पुण्य-पाप का वीर्य में स्फुरण, वह वास्तव में वीर्य नहीं। अपना बल शुद्ध उपयोग में रमाना, उसका नाम वीर्य कहा जाता है। ओहोहो! है? '**वीर्जं च सिद्ध सिद्धं**' अपने वीर्य से सिद्धि पायी हैं। किसी की मदद से या शुभाशुभ परिणाम के वीर्य से या शरीर का बल है... क्या कहते हैं? वज्रकाय कहते हैं न? वज्र शरीर। वज्रनाराचसंहनन, कहते हैं, नहीं। इनकार करते हैं। वज्रनाराचसंहनन की सहायता से मैं केवलज्ञान प्राप्त कर सकता हूँ, ऐसा मिथ्यादृष्टि मानता है। उसकी दृष्टि झूठी है। तो कहते हैं कि अपने वीर्य से सिद्धि प्राप्त की है। अपने वीर्य से प्राप्त कर सकता हूँ। पर की सहायता शरीर वज्रनाराच आदि की है नहीं। तो वज्रकाय है, शरीर है, हो; नहीं है—ऐसा नहीं, वह ज्ञान करने की चीज़ है कि एक दूसरी चीज़ है। ऐसा व्यवहार विकल्प भी आता है। है, परन्तु मेरे वीर्य की सिद्धि अपने अन्तर स्वरूप में निर्विकल्प शुद्धोपयोग से साधन होता है।

'**तारन तरनं च अन्मोय सहकारं**' क्या कहते हैं? मेरा आत्मवीर्य तारण तरण। स्वयं ही अपने को तारनेवाला। अपना निजस्वरूप शुद्ध आनन्द जो ज्ञान की रचना करे। क्या कहते हैं? अपना अन्तर वीर्य जो ज्ञान सम्यक् की रचना करे, आनन्द की रचना करे, अपने अनन्तगुण के निर्मल पर्याय की रचना करे, वह अपना तारण तरण अपना वीर्य है। दूसरे से मैं तिर सकता हूँ और दूसरे मुझे तारते हैं, ऐसा वीर्य मुझमें है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो! उपदेशक को ऐसा उपदेश करना चाहिए, ऐसा कहते

हैं। यह तो पर से होता है और ऐसे से होता है और इससे होता है। परवस्तु है अवश्य, देव-गुरु-शास्त्र चीज़ है अवश्य। नहीं है—ऐसा नहीं है। वाणी भी है अवश्य, परन्तु वह परद्रव्य है। उसकी सहायता से वीर्य की स्फुरणा होती है, वह उपदेश सच्चा नहीं है। समझ में आया? देखो!

पुरुषार्थ (वीर्य) ही तारण तरण बनानेवाला है... अपना ही वीर्य अपने को तारता है और दूसरे को भी उपदेश में आता है तो ऐसा ही आता है कि तेरा वीर्य स्वरूप की रचना तेरे आत्मबल से होती है। शुभाशुभ परिणाम से तेरे स्वरूप की रचना नहीं होती। और संहनन या शरीर के सामर्थ्य से (स्वरूप रचना नहीं होती)। यह कहते थे न, जंगल में रहते हैं, शरीर ऐसा है, सहन कर सकते हैं। नहीं, ऐसा इनकार करते हैं। शरीर मजबूत है, इसलिए ऐसे खड़ा रह सकता है, ऐसा वीर्य है... कहते हैं, नहीं। ऐसा नहीं है। झूठ बात है। ऐसा निमित्त हो। परन्तु वीर्य तो अपनी अन्तर में निमित्त के अवलम्बन बिना शुद्ध उपयोग के सामर्थ्य से साध सकता है। स्वयं ही अपने को तारनेवाला है। कहो, सेठी!

तथा। '**अन्मोय**' शब्द पड़ा है न? भाई! '**अन्मोय**' का अर्थ आनन्द करते हैं। मोद-मोद आता है न, इसलिए इसका अर्थ आनन्द करते हैं। '**अन्मोय**' शब्द पड़ा है न? अनुमोद। मोद अर्थात् आनन्द होता है। इसलिए अनु का फिर इन्होंने परम आनन्द किया। वरना ऐसे तो '**अन्मोय**' हो जाता है। अनुमोदन। परन्तु वह मोद है न मोद शब्द (इसलिए) आनन्द। अनुमोदन। और वह वीर्य निजानन्द का सहकारी है। अपना पूर्ण अनन्त आनन्द प्रगट करने में अपना वीर्य ही सहकारी अर्थात् निमित्त साधन है। समझ में आया? '**अन्मोय**' शब्द पड़ा है न इसमें। मोद का अर्थ यह भाषा में लिया है। मोद-प्रमोद-प्रमोद। प्रमोद अर्थात् आनन्द... आनन्द... आनन्द... अपने अतीन्द्रिय आनन्द में अपना वीर्य ही सहकारी है। सहकारी क्यों लिया? देखो, समझ में आया?

आनन्दगुण अपनी पर्याय से अपना साधन करता है। परन्तु वीर्यगुण साथ में सहकारी है। एक गुण दूसरे गुण को निमित्त है, परन्तु एक गुण दूसरे गुण को यथार्थ में सहायक नहीं, ऐसा कहते हैं। सहकार शब्द पड़ा है न? क्या? आत्मा में अनन्त गुण है।

सर्व गुण असहायी। एक गुण दूसरे गुण को सहायता नहीं करता, ऐसा स्वतन्त्र स्वभाव है। आहाहा! देरियाजी! वाँचे नहीं, विचारे नहीं, ऐसा का ऐसा बिना भान के चलता जाये। देखो, उसमें लिखा है। कि निजानन्द का सहकारी वीर्य है। ऐसा लिखा है। पाठ में है या नहीं? '**अन्मोय सहकारं तारन तरनं**' वीर्य—अपना पुरुषार्थ, आत्मबल एक वीर्य नाम का गुण है, वह अपने वीर्य की पर्याय की रचना करता है, साथ में अनन्तगुण की रचना करने में निमित्त—सहकारी होता है। अपना गुण अपनी पर्याय से परिणमन स्वयंसिद्ध, दूसरे गुण के उपादान के सहकार बिना (करता है)। निमित्त हो, निमित्त हो। समझ में आया? दूसरा राग नहीं, निमित्त नहीं, परन्तु अपने अतीन्द्रिय आनन्द में साधकपना परिणमन करता है तो, कहते हैं कि उसमें वीर्यगुण सहकारी साथ में है। निमित्तरूप से साथ में है। बाकी प्रत्येक गुण अपनी-अपनी अनन्त गुण की पर्याय में परिणमनेवाला स्वतन्त्र है। महेन्द्रकुमारजी! बड़ी बात बहुत सूक्ष्म है। जैन तत्त्व को समझना, यह कोई साधारण बात नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात है।

एक द्रव्य में अनन्त गुण, अनन्त गुण की एक-एक पर्याय स्वतन्त्र। दूसरे गुण की पर्याय सहकार-निमित्तरूप से साथ में है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? तो दूसरा निमित्त तो सहकारी कहीं रह गया। शरीर का सहकार और मनुष्य का सहकार... कहते हैं न लोग, भाई सबका सहकार होना चाहिए। दो हाथ से ताली बजती है। कहते हैं तुम्हारे? एक हाथ से ताली बजती है? सबका सहकार होना चाहिए। यहाँ इनकार करते हैं। दूसरे का तो सहकार नहीं, मात्र अपने आनन्दगुण की और केवलज्ञान गुण की पर्याय परिणमती है, उसमें वीर्यगुण का सहकार है। अपने वीर्यगुण का सहकार है। तो इस अपेक्षा से कहा गया है कि स्वरूप की सर्व गुण की रचना वीर्य ने की। क्योंकि एक-एक गुण में भी ऐसी शक्ति है। वीर्य की एक-एक गुण में शक्ति ऐसी है। ज्ञानगुण अपनी शक्ति से परिणम रहा है, दर्शन अपनी शक्ति से परिणम रहा है, आनन्द अपनी शक्ति से परिणम रहा है, स्वच्छता अपनी शक्ति से परिणम रही है। समझ में आया? ऐसे उपदेश को उपदेश शुद्ध कहा जाता है। दूसरे उपदेश को अशुद्ध और मिथ्या आगम का उपदेश कहा जाता है। धर्मचन्दजी! समझ में आया?

क्या कहा, देखो, '**हितमित परिनइ जुत्तं, कोमल परिनाम न्याय सहकारं।**' यहाँ भाषा ली है। '**हितमित**' यह वीर्य हितकारी है। अपना आत्मबल वीर्यबल स्वभाव सामर्थ्य ही हितकारी है। शरीर का सामर्थ्य या दूसरा सामर्थ्य हितकारी नहीं। अनन्त है। अपने वीर्य की शक्ति में अनन्त अपरिमित बेहदता पड़ी है। एक समय का वीर्य अनन्तगुण में मददरूप निमित्त, इतनी सामर्थ्य और एक समय का वीर्य स्वरूप को धारण करता है और डिगता नहीं, ऐसी एक समय के वीर्य की सामर्थ्य है। अनन्त है। अपने परिणमन में लीन है। '**परिनइ जुत्तं**' कहा है न? तो वीर्य अपनी पर्याय में लीन है। समझ में आया? पर्याय-पर्याय। वीर्य की पर्याय होकर अपनी पर्याय में लीन है। ऐसा वीर्यगुण का कार्य है।

मुमुक्षु : स्वतन्त्र परिणमन बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र परिणमन है।

'**कोमल परिनाम न्याय सहकारं**' कोमल अर्थात् सरल अर्थात् कोमल अर्थात् सीधा है। वीर्य सीधा सरल है और कोमल स्वभाव अनन्त ज्ञान का सहकारी, वह और यहाँ लिया, देखो! अभी केवलज्ञान जो प्राप्त होता है, उसमें भी वीर्य सहकारी—साथ में है। अपने केवलज्ञान की प्राप्ति हुई, वह स्वरूप के साधन में। देखो, मोक्षमार्ग लिया है इसमें। तो यह केवलज्ञान की प्राप्ति का साधन स्वयं करता है, उसमें वीर्य भी सहकारी साधन है। आनन्द में सहकारी, केवलज्ञान में सहकारी, केवलदर्शन में सहकारी अपना वीर्य है। शरीर पुष्ट हो तो बहुत काम कर सके, अपवास कर सकता है। धूल है, अपवास करे उसमें क्या आया? धर्म कहाँ आया उसमें? वह तो शरीर की—जड़ की क्रिया हुई। जड़ की क्रिया का अर्थ राग मन्द है अपवास में, वह पुण्य है। परन्तु आहार नहीं आया, नहीं गया, वह तो जड़ की क्रिया है, वह आत्मा की क्रिया नहीं। कहो, समझ में आया?

तो कहते हैं कि '**कोमल परिनाम न्याय सहकारं**' आत्मा में वीर्यगुण है। '**इसी वीर्य से आत्मा अनेक भवसागर से तार लेता है।** अपने को अनन्त संसार से तार लेता है। '**इसलिए वही वीर्य तारण तरण है। ...तारण-तरण है। इस वीर्य की सहायता से**

आनन्द सदा बना रहता है और ज्ञान सदा जाना करता है। यह वीर्य अनन्त है। कभी अपने स्वभाव के परिणमन से थकता नहीं। यहाँ यह लिया मूल तो, भाई! वह आता है न वीर्य थकता नहीं। ऐसा कि अनन्त गुण प्रगट हुए तो अब वीर्य थक गया। पूर्ण वीर्य हो गया। समय-समय में नयी-नयी वीर्य की पर्याय अपने सामर्थ्य से परिणमन होती है। ऐसा साधन अन्तर में मानना, अनुभव करना, उसका नाम मोक्षमार्ग कहा जाता है। अब यह चार अनुयोग में है न? श्रावक में है न? श्रावकाचार में है? कहाँ है? नहीं चार अनुयोग? वह दृष्टि ली थी न? द्रव्य। हाँ, श्रावकाचार।

.... प्रथमानुयोग का अभ्यास करना। जिसमें कथा का योग आता है। भगवान ने कहा है, नया नहीं। नाम बदलता है, परन्तु कथानुयोग में अनन्त तीर्थंकरों ने... उसमें आयेगा, देखो! '**प्रथमानुयोग करनानं, चरनं**' पश्चात् करणानुयोग, पश्चात् चरणानुयोग और '**द्रव्यानि विदंते**' द्रव्यानुयोग। यह चार हैं। श्रावकाचार दूसरा है? नहीं? '**न्यानं तिअर्थं संपूर्नं, सार्धं पूजा सदा बुधै**' चार अनुयोग, **ऐसे चार प्रकार शास्त्र जानना जिनमें अपने रत्नत्रयरूपी...** उसमें जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो कथन है, वह ज्ञान है। उसकी '**पूजा सदा बुधै सार्धं**' पूजा सदा पण्डितों को करना चाहिए। कहो, इसमें चार का अधिकार। देखो,

प्रथमानुयोग पद वेदंते, विंजनं पद सब्दयं।
तिअर्थं पद सुद्धस्य, न्यानं आत्मा तुव गुनं॥३४८॥

प्रथमानुयोग में भगवान की वाणी में बहुत आया है। गणधर का कथन, तीर्थंकर का कथन, बलदेव का कथन, वासुदेव का कथन, धर्मकथा का कथन। तो कहते हैं कि प्रथमानुयोग से शास्त्र का अनुभव करना चाहिए। '**वेदंते**' जानना चाहिए, जानना। आती तो बहुत बात है। जिसे प्रथमानुयोग की कथा की अरुचि है, उसे अध्यात्म की अरुचि है। आता है न? कहाँ? मोक्षमार्गप्रकाशक में। हमारे पण्डित तैयार हैं न! समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। जिसे चार अनुयोग में किसी भी अनुयोग समझने की अरुचि है, उसे अध्यात्म की सच्ची रुचि है ही नहीं। समझ में आया? देखो, यहाँ लिखा है न? '**प्रथमानुयोग पद वेदंते, विंजनं पद सब्दयं।**' व्यंजन, अक्षर, शब्द, वाक्य,

अर्थ यह तो निमित्त से क्या-क्या अलंकार करते हैं शास्त्र में! भावार्थ। उसे प्रगट पदार्थ को शुद्ध जानना चाहिए। बराबर शुद्ध पद क्या कहते हैं, वह जानना चाहिए। '**न्यानं आत्मा तुव गुनं**' यथार्थ ज्ञान, वह आत्मा का गुण है। अभी तो फिर लेंगे। शाश्वत् पड़ा है। '**विंजनं च पदार्थं च, सारस्वतं**' प्रथमानुयोग शाश्वत है, ऐसा कहते हैं, भाई! नाम बदले शब्द।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यक्ति भिन्न-भिन्न होते हैं, प्रत्येक तीर्थंकर, प्रत्येक गणधर भिन्न-भिन्न हों। परन्तु '**विंजनं च पदार्थं च, सारस्वतं नाम सार्धयं**' ३४९ गाथा है। क्या कहते हैं, देखो! अक्षर, शब्द, पदार्थ और नाम। जो कथा चलती है वह। उसके सब अर्थ सदा से ही चले आते हैं। अनादि का प्रथमानुयोग है। उसमें कोई नयी बात नहीं। चारों अनुयोग भगवान के मुख से निकले हुए हैं। जहाँ.... कथनशैली हो, वहाँ आगे मूल बात हो, वहाँ वह बात गौण हो जाती है। परन्तु चारों ही बात तो शास्त्र में है। शास्त्र का अभ्यास चारों अनुयोगों का यथार्थ ज्ञान के लक्ष्य से, हों! आत्मा के लक्ष्य से। परलक्ष्य से करे, ऐसा नहीं। तो ऐसा चला आता है। उस भाव का अनुभव करना चाहिए। निश्चल ज्ञानमय आत्मा के साथ-साथ जानना चाहिए। उसके साथ आत्मा का ज्ञान भी साथ में करना चाहिए। देखो, है या नहीं? अकेला नहीं। '**धुवंन्यान मयं सार्धं**' प्रथमानुयोग का ज्ञान करना चाहिए। साथ में उसमें शुद्ध आत्मा का निपटारा करना चाहिए कि इसमें शुद्धात्मा क्या इन्होंने कहा, वह निकास चाहिए। समझ में आया?

पश्चात् देखो,

करनानुयोग संपूर्नं, स्वात्म चिंता सदा बुधै।
स्व स्वरूपं च आराध्यं, करनानुयोग सारस्वतं॥३५०॥

करणानुयोग पूर्ण वाँचना चाहिए। निवृत्ति कहाँ है? नवराश को क्या कहते हैं? फुरसत। श्रावक को श्रावकाचार में तारणस्वामी आदेश करते हैं, देखो! इसके बिना भेद कहाँ से होगा कि यह अन्यमति का यह कथन है, जैन का यह कथन है, दूसरे की यह मान्यता है, सत्य यह है, असत्य यह है, ऐसा जब तक ज्ञान यथार्थ न हो, तब तक

विवेक नहीं हो सकता।

देखो, '**करनानुयोग संपूर्नं**' ऐसा पाठ है। उसमें शाश्वत् के बाद आयेगा। वाँचना चाहिए। '**स्वात्म चिंता सदा बुधै**' इस द्वारा पण्डितों को अपने आत्मा की चिन्ता... वापस उसमें से निकालना है आत्मा। करणानुयोग में से वाँचन करके उसमें से निकालना है आत्मा। '**स्व स्वरूपं च आराध्यं**' फिर अपने स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। यह करणानुयोग सदा ही वस्तु का स्वरूप बतलानेवाला है। देखो! उसमें भी शाश्वत् आया। '**करनानुयोग सारस्वतं**' भगवान के मुख से अनन्त काल से तीर्थंकर के मुख से प्रथमानुयोग चला आता है। चरणानुयोग भी अनादि वीतरागदेव के मुख से चला आया है। शाश्वत् पद पड़ा है उसमें, हों! समझ में आया?

फिर उसमें देखो,

सुद्धात्मा चेतनं जेन, उवं हियं श्रियं पदं।
पंच दीप्ति मयं सुद्धं, सुद्धात्मा सुद्धं गुनं॥३५१॥

यह इसमें से योग की सहायता से शुद्ध आत्मा का अनुभव हो और ओम ह्रीं मन्त्र लिया है। पंच परमेष्ठी स्वरूप का शुद्धात्मा के गुण को जाने। वही **करणानुयोग का मूल अभिप्राय है।** उसमें से भी शुद्धात्मा निकाले करणानुयोग के विचार में, उसका नाम करणानुयोग का अभ्यास कहा जाता है।

सल्यं मिथ्या मयं तिक्तं, कुन्यानं त्रि विमुक्तयं।
ऊर्धं च ऊर्ध सद्भावं, उवंकारं च विंदते॥३५२॥

'**सल्यं मिथ्या मयं तिक्तं, कुन्यानं त्रि विमुक्तयं**' क्यों उसमें शल्य कहा? कि जैसे करणानुयोग वीतराग के मार्ग में है, ऐसी बात दूसरे में है ही नहीं। तो '**सल्यं मिथ्या मयं तिक्तं**' ऐसा कहा है। अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा, एक-एक परमाणु में अनन्त गुण, एक-एक गुण की एक-एक पर्याय स्वयंसिद्ध, ऐसा करणानुयोग में कथन चलता है। अभ्यास की खबर नहीं और बिना भान के माने कि भाई! हमको भगवान सच्चे, गुरु सच्चे। परन्तु गुरु सच्चे समझे बिना तुझे सच्चे कहाँ से आये? समझ में आया? मिथ्यारूप तीन शल्य को त्यागना चाहिए और तीन प्रकार... यह करणानुयोग में आया है, हों!

कुज्ञान को त्यागना चाहिए। अज्ञानी का जो ज्ञान करणानुयोग के नाम से लेता है कि ऐसा है और वैसा है, वह सच्चा नहीं है। और '**ऊर्ध**' भगवान को और ऊँचे स्वभाव को भले प्रकार से जानना चाहिए। लो! अभी उसमें एक करणानुयोग निकाला भाई उसमें। है उसमें?

'**दिव्य दृष्टि च संपूर्नं, सुद्धं संमिक दर्सनं।**' करणानुयोग में से द्रव्यदृष्टि निकाली। '**दिव्य दृष्टि च संपूर्नं,**' देखो, उसमें भी सम्पूर्ण शब्द पड़ा है। '**सुद्धं संमिक दर्सनं।**' '**न्यान मंय सार्धं सुद्धं, करनानुयोग स्वात्म चिंतनं।**' द्रव्यदृष्टि। यह द्रव्यार्थिकनय पूर्ण द्रव्य को देखनेवाला है। देखो, करणानुयोग में सबका—पर्याय का कथन है, परिणाम का सूक्ष्म कथन है। तो उसमें से वाँचकर, समझकर अपनी द्रव्यदृष्टि से, द्रव्यार्थिकनय से एक स्वरूप अपना है, वह करणानुयोग में से निकालना चाहिए। समझ में आया?

द्रव्य को देखने के लिये इसी के द्वारा... 'सुद्धं संमिक दर्सनं' शुद्ध सम्यग्दर्शन का लाभ होता है। पर्याय का ज्ञान करना, करणानुयोग का ज्ञान करना, परन्तु अपना द्रव्य शुद्ध अभेद त्रिकाल है, उसकी दृष्टि से सम्यग्दर्शन का लाभ है। ऐसा करणानुयोग में से निकालना। समझ में आया? यह श्रावक को कहते हैं श्रावक को। हम तो भाई श्रावक गृहस्थाश्रम में हैं। हमारे क्या करना? धर्म करना है या नहीं तुझे? तो भगवान कहते हैं कि चार अनुयोग का ज्ञान न हो और एक द्रव्यानुयोग की रुचि रखे और करणानुयोग या चरणानुयोग या प्रथमानुयोग की अरुचि रखे तो चारों ही अनुयोग तो भगवान ने कहे हैं। जिनवाणी की उसे शंका है कि यह जिनवाणी है या नहीं? समझ में आया? चारों ही अनुयोग भगवान से चले आये हैं। अनादि से शाश्वत् चले आये हैं। भाषा बदल जाये, नाम बदले। '**न्यान मंय सार्धं सुद्धं**' ज्ञान में यथार्थ शुद्धात्मा का अनुभव होता है, वही करणानुयोग की चिन्तवना का फल है।

अब—

चरनानुयोग चारित्रं, चिद्रूपं रूप द्रिस्यते।
ऊर्धं आर्धं च मध्यं च, संपूरनं न्यान मयं धुवं॥३५४॥

सबमें सम्पूर्ण शब्द डाला है। श्रावक और मुनि की व्यवहार क्रिया चारित्र का

अधिकार जिसमें है। पंच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, बारह व्रत, षट्कारक, छह अनायतन का त्याग, षट्कर्म श्रावक के, जिसमें वर्णन करते हैं, उसके द्वारा चैतन्यस्वभाव आत्मा का अनुभव होता है। ऐसा ज्ञान यथार्थ हो तो अपना आत्मा उससे पर्याय से भिन्न अपना पूर्ण द्रव्य है, उसका अनुभव होता है। उसके ऊपर, नीचे, मध्य में सर्व ओर ज्ञानमय निश्चल आत्मा का दर्शन होता है। आत्मा सम्पूर्ण रीति से परिपूर्ण ज्ञानमय है, ऐसा ज्ञान होता है। उसमें आया है। यह जरा नीचे है।

अब द्रव्यानुयोग देखो। चरणानुयोग आ गया। चरणानुयोग का अभ्यास करना। चरणानुयोग में व्यवहार क्रिया की बात बहुत है। चरणानुयोग में व्यवहार क्रिया की बात आती है। आती है, है न। श्रावक को भी है और मुनि को भी है। राग आवे, शुभ आता है। न आवे तो क्या वीतराग हो गया? उसकी दृष्टि मिथ्यात्व है। उसकी भूमिका प्रमाण चरणानुयोग का व्यापार उसे होता है, राग होता है। कर्तृत्वबुद्धि नहीं रखना। और उसे धर्म का साधन, वह राग करते-करते होगा, ऐसी मान्यता नहीं होनी चाहिए।

मुमुक्षु : सबमें से मक्खन निकालना।

पूज्य गुरुदेवश्री : मक्खन निकाल लेना चाहिए और उसका ज्ञान तो बराबर करना चाहिए।

दिव्यानुयोग उत्पादंते, दिव्य दिस्टी च संजुतं।
अनंतानंत दिस्टंते, स्वात्मानं विक्त रूपयं॥३५६॥

ओहोहो! देखो, द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिए। द्रव्यानुयोग शब्द से? छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय, सबको द्रव्यानुयोग कहते हैं। उसका इसे ज्ञान करना चाहिए। स्वलक्ष्य होने के लिये, दूसरे प्रयोजन के लिये नहीं। मान के लिये कि हमको आयेगा तो व्याख्यान करेंगे तो लोग पण्डित कहेंगे। यह तो मान दृष्टि है। अपने स्वलक्ष्य के लिये, अपना ज्ञान प्रयोजन सिद्ध करने के लिये द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना चाहिए। '**दिव्य दिस्टी च संजुतं**' साथ में द्रव्यार्थिकनय से शुद्धात्मा की दृष्टि भी प्राप्त करनी चाहिए। अकेला अभ्यास नहीं। अभ्यास के साथ '**दिव्य दिस्टी च संजुतं**' द्रव्यदृष्टि क्या? कहो, सेठ! द्रव्यदृष्टि अर्थात् क्या? द्रव्य अर्थात् वस्तु। एक

समय में ध्रुव त्रिकाल वस्तु की दृष्टि प्राप्त करना। द्रव्यानुयोग में यह निकाला, देखो! **'दिव्यानुयोग उत्पादंते, दिव्य दिस्टी च संजुतं।'** द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना, परन्तु उसमें से क्या निकालना? द्रव्यार्थिकनय शुद्धात्मा त्रिकाल ज्ञानमूर्ति ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ऐसा दृष्टि प्राप्त करना चाहिए। समझ में आया? यह यहाँ श्रावक को कहा है। अब वह कहते हैं कि यह तो मुनि हो तब होता है। अभी कहते हैं न कि द्रव्यानुयोग का सार तो मुनि को लागू पड़ता है। यह कहते हैं न कि समयसार अभी नहीं वाँचना। समयसार नहीं। वह तो मुनि का अधिकार है। छूना नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा सुना है न! कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि प्रथम मिथ्यादृष्टि अगृहीत है, उसे भी हम सुनाते हैं।

और यहाँ क्या कहा? तारणस्वामी क्या कहते हैं, देखो! कि श्रावक को... अभी श्रावक भावलिंग न हुआ हो परन्तु उसका प्रयत्न करना चाहता है श्रावकपने का, तो उसे भी **'दिव्य दिस्टी च संजुतं'** द्रव्यानुयोग का अभ्यास करना। मुनि होने के पश्चात् अभ्यास करना, ऐसी बहुत गड़बड़ करते हैं। समझ में आया? यह कहे कि नहीं। पहले समयसार नहीं चाहिए। पहले बन्ध चाहिए। महाबन्ध चाहिए। बताया था रात्रि में एक दिन। अरे भगवान! अभ्यास चारों अनुयोगों का होता है, परन्तु उसमें अध्यात्म के अभ्यास के लिये द्रव्यानुयोग मुख्य है। मुख्य है तो उसमें से द्रव्यदृष्टि निकालनी चाहिए। समझ में आया?

क्या कहते हैं? देखो, जिसे **'अनंतानंत दिस्टंते,' अनन्तानन्त व्यक्तरूप शुद्धात्मा के समान जगत की अनन्त, आत्मा प्रगटरूप से दिखाई पड़े।** जिसे द्रव्यदृष्टि हो तो ऐसे सर्व आत्मा, अनन्ता अनन्त आत्मा ऐसे हैं और अनन्त आत्मा सिद्धपद को प्रगट कर चुके हैं। और अनन्तानन्त आत्मा सिद्ध समान हैं, ऐसा पदार्थ का द्रव्यानुयोग अभ्यास करने से, द्रव्यदृष्टि करने से भान होता है। समझ में आया? अनन्तानन्त पदार्थ आत्मा है, एक नहीं। ऐसा न माने। तो कहते हैं न आगे? निगोद में जायेगा। जो भगवान ने कहा, ऐसी दृष्टि में शंका करता है। शंका का आया था न कहीं? आया था कहीं, नहीं? उपदेशसार? ८८, लो। भाई! यह चलते विषय में। ८८ पृष्ठ है ८८। देखो, ११८ गाथा, ८८ पृष्ठ।

राग सहाव न गलियं, नहु गलियं मिच्छ विषय सल्यं च।
जिन उत्त ससंक निसंकं, अगुरु अजिन सरनि संसारे॥११८॥

११८ गाथा है। समझ में आया? '**राग सहाव**' जिसे संसार की—राग की रुचि का स्वभाव गला नहीं—नाश नहीं हुआ। और '**न गलियं, नहु गलियं मिच्छ विषय सल्यं च**' जिसका मिथ्यात्व शल्य गया नहीं। मिथ्या अभिप्राय सर्वज्ञ से विरुद्ध अभिप्राय नाश नहीं हुआ। न कोई शल्य ... है। '**जिन उत्त ससंक**' ऐसे जिनेन्द्र कथित उपदेश में शंका रखता है। जिनेन्द्र सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा, उसमें शंका होगी? ऐसा होगा या नहीं? होगा या नहीं? होगा क्या? है ही त्रिकाल में। अनन्त आत्मा है, अनन्तगुणे परमाणु हैं, एक-एक परमाणु में अनन्तगुणे गुण हैं। अनादि-अनन्त है। ऐसा सुनकर जो शंका करता है तो उसका मिथ्यात्व नाश नहीं हुआ। मिथ्यात्व गया नहीं, संसार की रुचि छूटी नहीं। जिनेन्द्र कथित '**जिन उत्त ससंक**' **शंका रखना श्रद्धान नहीं लाता है।** उसे सच्ची श्रद्धा होती नहीं।

'**निसंकं, अगुरु अजिन सरनि संसारे।**' परन्तु नि:शंक होकर, कुगुरु की शरण लेकर। ऐसे अनन्त आत्मा अनन्त परमाणु, अनन्त पदार्थ, अनन्त गुण, अनन्त पर्याय आदि जो कहा, उसकी श्रद्धा न करने से, उससे विरुद्ध कहनेवाले... देखो, उन्होंने कहा। एक ही आत्मा माननेवाला, सर्वव्यापक आत्मा है, उसमें हमारा भी साधन है। ऐसा माननेवाला ऐसा नि:शंक होकर कुगुरु का शरण लेता है। वह भी अच्छा... यह भी अच्छा... अच्छा है। ओहोहो! त्यागी कितना है! जंगल में रहता है, कन्दमूल खाता है, मात्र जंगल का पानी पीता है। समझ में आया? गाँव में भी आता नहीं, स्त्री का तो मुख भी नहीं देखता। बहुत त्यागी है। ऐसे अज्ञानी धर्म के त्यागी की शरण लेता है। समझ में आया? देखो लिखा है। '**निसंकं, अगुरु अजिन सरनि संसारे।**' अगुरु अर्थात् नि:शंक होकर कुगुरु की शरण लेकर संसार के मार्ग में भटकता है। संसारे शरण। चौरासी लाख निगोदादि में भटकता है। समझ में आया? इसके पश्चात् ११७ में भी है। इसी और इसी में।

जिन उत्तं नहु दिट्ठं, जन उत्तं जन रंजनस्य सभावं।
न्याय विन्यायन रुचियं, अन्यानं अन्मोय न्याय विरयंमि॥११७॥

अहो! भगवान ने जो अनन्त गुण, अनन्त पदार्थ सब कहे, वे जिसे रुचते नहीं। **ऊपर कहे गये अनेक प्रकार रागी जीव जिनेन्द्र भगवान के कहे गये तत्त्व पर दृष्टि नहीं देते हैं।** है? **'जन उत्तं जन रंजनस्य' लोगों के कहने पर लगे हुए जिनसे जनता रंजायमान हो।** अज्ञानी लोगों ने जो मार्ग चलाया, उसमें चलता है। **'जन उत्त'** लोगों ने अज्ञानियों ने वह मार्ग चलाया, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र (को मान्य करके) और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का लोप करके। **लोगों के कहने पर लगे हुए...** लोग कहे, चलो भाई! यह बड़े हैं। राजा मानते हैं। ... मानते हैं। बहुत लोग मानते हैं। तो कुछ होगा न? पीछे लग जाते हैं भेड़ की भाँति। घेंटा को क्या कहते हैं? भेड़, भेड़, भेड़ (भेड़चाल)।

'जन उत्तं' देखो, शब्द है। वीतराग उत्तम नहीं, जिन उत्तम नहीं। **'जन उत्तं'** यह शब्द पड़ा है। क्या कहते हैं? जिन उत्तं नहीं, **'जन उत्तं'**। जिनेन्द्रदेव भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने अनन्त द्रव्य, अनन्त परमाणु आदि अनन्त गुण, अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध अकृत्रिम बताये हैं, उसकी श्रद्धा नहीं करके **'जन उत्तं'** सामने शब्द पड़ा है। **'जिन उत्तं नहु दिट्ठं, जन उत्तं जन रंजनस्य'** और लोगों का कहा हुआ, अज्ञानी का कहा हुआ, उसमें जो लगे हुए हैं। **जिनसे जनता रंजायमान हो। ऐसे भव में लगे रहते हैं, उसको आत्मज्ञान व भेदज्ञान नहीं रुचता।** उसको आत्मज्ञान पर से भिन्न, पर अनन्त है, मैं परिपूर्ण हूँ, ऐसा पर से भिन्न भेदज्ञान उसे नहीं रुचता। **वे अज्ञान की अनुमोदना करते हैं।** देखो, **'अन्यानं अन्मोय'** यहाँ अनुमोदना लिया, भाई! अनुमोदन। अज्ञान की प्रशंसा करता है। बस, लो, अज्ञानी की प्रशंसा करता है अज्ञान की जहाँ-तहाँ। वह बहुत त्यागी हैं, वैरागी हैं, इतना ज्ञान, अकेले जंगल में रहते हैं, अकेले हैं, वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं रखते, भोजन भी कभी बाहर से आवे तो ले लेते हैं, नहीं तो १५-१५ दिन भूख सहन करते हैं। वह कहीं श्रद्धा बिना करते हैं? अब सुन न! मिथ्यादृष्टि ने ऐसा अनन्त बार किया है। समझ में आया? तो कहते हैं कि ऐसे अज्ञानी की बात उसे रुचती है, परन्तु ज्ञान से विरक्त रहता है। सच्चे ज्ञान से तो विरक्त रहता है। बराबर है?

११९ में है।

जिन उत्त भाव नहु लष्यं, जिन उत्तं भाव अन्मोयं संजुत्तं।
जनरंजन राग सहावं, रागं अन्मोय सरनि भावना हुंति॥११९॥

भाषा देखो न, भाषा कैसी की है! है? देरियाजी! अहो! **जिनेन्द्र भगवान कथित पदार्थों पर... 'जिन उत्त भाव'** भाव शब्द पड़ा है न? भाव अर्थात् पदार्थ। भगवान वीतराग जिनेन्द्रदेव ने कहे हुए अनन्त पदार्थ, अनन्त गुण, अनन्त जीव, त्रिकाल शाश्वत् वस्तु, ऐसे अनन्त पदार्थों का भाव भासित होने पर मिथ्यादृष्टि लक्ष्य नहीं देता। उस भाव का ज्ञान क्या है, उसके ऊपर लक्ष्य नहीं देता। लक्ष्य नहीं देता, विचार नहीं करता, मंथन नहीं करता। **'जिन उत्तं भाव अन्मोय'** परन्तु अल्पज्ञानी लोगों के कहे हुए, अज्ञानी के कहे हुए। देखो, **'जिन उत्तं भाव'** वापस भाव पड़ा है। दोनों में भाव पड़ा है। भाव शब्द से पदार्थ। पदार्थ को भाव कहते हैं, गुण को भाव कहते हैं, पर्याय को भाव कहते हैं। यहाँ भाव पदार्थ को कहते हैं। समझ में आया? भावाय आता है, नहीं? **'नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते चित्स्वभावाय भावाय'** वहाँ भाव द्रव्य को कहते हैं भाव। वह यहाँ भाव द्रव्य है, पदार्थ है। भाव। जगत के अनन्त पदार्थ। उसे **अल्पज्ञानी लोगों के कहे हुए पदार्थ और भावों की अनुमोदना करते हैं।** शोभालालजी! यह ज्ञान हुए बिना क्या होगा? गड़बड़ हुए बिना रहती नहीं।

'जनरंजन राग सहावं' उसका ऐसा राग स्वभाव बन जाता है कि लोगों के प्रसन्न करना चाहते हैं। बस। ... बड़े-बड़े नेता, बड़े-बड़े मनुष्य, राजा... देरियाजी! बात तो बहुत कठिन है, हों! तारणस्वामी तो बराबर फटकार मारते हैं देखो खुल्ला। ऐसा राग स्वभाव बन गया। ऐसा कहते हैं न? **'जनरंजन राग सहावं'** लोगों को अनुकूल पड़े, ऐसी बात वीतरागदेव त्रिलोकनाथ की बात कठिन पड़ती है, ऐसा। मृदुस्वभाव आया न? समन्तभद्राचार्य ने कहा न! समन्तभद्राचार्य ने स्तुति में बताया था। २४वें भगवान। हे नाथ! अन्यमति की वाणी मृदु लगती है। कोमल लगती है, मीठी लगती है। भगवान की भक्ति करो जाओ कल्याण होगा। नाम स्मरण करो, नाम स्मरण करो। नाम से तिर जायेगा। मीठी लगे, भाई! है जहर। समझ में आया? समन्तभद्राचार्य कहते हैं, प्रभु! आपका कथन है तो महा अलौकिक, परन्तु मृदु नहीं लगता, कठिन लगता है और अन्यमति की वाणी कोमल-कोमल लगती है। यह एक साधु को भोजन करा दो।

भोजन करा दो, तुम्हारा मोक्ष हो जायेगा। अभी कहते हैं न कि हमको दो, तुमको निर्जरा होगी। धूल में भी निर्जरा नहीं, सुन तो सही। सच्चे साधु भाव दिगम्बर मुनि हों, उन्हें भी आहार देने के भाव को भगवान पुण्य कहते हैं। संवर-निर्जरा नहीं। आहाहा! अब यह तो अभी कुगुरु दृष्टि में विपरीतता, श्रद्धा में विपरीतता। हमको एक बार आहार बना दो। जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। तेरा तो ठिकाना नहीं, दूसरे का कल्याण कैसे हो जाएगा? समझ में आया?

मुमुक्षु : इसलिए सरल लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल लगता है, इसलिए सेठिया घुस जाते हैं उसमें। समय मिलता नहीं तम्बाकू के कारण। जिसे जो व्यापार हो। इन्हें तम्बाकू का है। जिसे जो व्यापार हो, उसमें घुस जाते हैं। निवृत्ति नहीं मिलती।

मुमुक्षु : मुख्य तो हमको ही पीटने का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख्य तुमको ही पीटने का है बराबर। तुम मुख्य हो या नहीं? यह मुखिया है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

अल्पज्ञानी कहे हुए पदार्थ की भावों की अनुमोदना कर सके। अनुमोदना करे। और जनरंजन करना, ऐसा स्वभाव हो गया। और निरन्तर भावना ऐसी होती है कि **रागभाव की अनुमोदना के मार्ग में लगा रहता है।** राग और विकल्प में लगा रहे, ऐसी बात की ही प्रशंसा करता है। परन्तु वीतराग भगवान त्रिलोकनाथ ने कहा, उसकी गन्ध भी नहीं आती। कहो, समझ में आया? इत्यादि... इत्यादि... बहुत बात है। लो, समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ११, शनिवार, दिनांक - १४-०९-१९६३
गाथा-४९४ से ४९७, प्रवचन-३

भगवान का सत्य उपदेश, सच्चा सार किसे कहते हैं, यह बात तारणस्वामी इसमें कहते हैं। मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है। तो उपदेश में मोक्षमार्ग सत्य—शुद्ध कैसा होना चाहिए, यह बात चलती है। ४९५।

सिद्धं च सव्व सिद्धं, सिद्धं अंगं च दिगंतरं दिट्ठं।
सिद्धं अर्थ तिअर्थं, समर्थ्यं समय दिस्टि अन्मोयं॥४९५॥

'सिद्धं' सिद्ध परमेष्ठी है जिन्होंने सर्वसिद्धि प्राप्त कर ली है। सिद्ध भगवान अपने स्वरूप में पूर्ण प्राप्ति कर ली हैं। ऐसा जो भाव अन्दर पड़ा है। गुप्त-गुप्त। वह गुप्त शक्ति पड़ी है सिद्ध समान। उसका आश्रय करने से सिद्धपद तुझे पूर्ण प्राप्ति होगी। ऐसा उपदेश करना, उसका नाम उपदेशशुद्धसार कहा जाता है। समझ में आया? गुप्त है न कहीं। गुप्त का है सही कहीं। ममलपाहुड़ में होगा? सूर्य समान गुप्त आत्मा, ऐसा कुछ है। ममलपाहुड़ है। पृष्ठ २९०। ममलपाहुड़, भाई तीन है। देखो, उसमें होगा। २८० पृष्ठ पर देखो उसमें होगा। ममलपाहुड़ तो बहुत है। उसकी दूसरी गाथा। ... अर्क अर्थात् सूर्य। **सूर्य समान गुप्त आत्मा से मेल करके।** देखो, है? भाई को बताओ। देरियाजी को मूल बताओ। कहाँ है? बड़े भाई नहीं आये? दूसरी गाथा है न? उसमें दूसरी गाथा का अर्थ है। देखो! .... यह दूसरी गाथा है, उसका अर्थ है। ... सूर्य समान भगवान आत्मा अन्तर गुप्त है। सिद्धपर्याय पूर्ण प्रगट है और अपने आत्मद्रव्य में गुप्तरूप से सिद्ध स्थित है। देरियाजी! शक्ति में, ध्रुव में। पर्याय में राग-द्वेष पुण्य-पाप होने पर भी, स्वरूप-स्वभाव सत्त्व ध्रुव में शक्तिरूप **सूर्य समान गुप्त आत्मा से मेल करके जिनपद का प्रकाश हुआ है।** वीतराग। यह सिद्ध शब्द कहा न अभी? सिद्ध को सर्व सिद्ध पर्याय प्राप्त हुई। कैसे? कि अपना शुद्ध आत्मा अन्दर गुप्त है, ध्रुवरूप है, उसके साथ मेल करके। 'मिलयं' है न शब्द? मेल करके जिनपद का प्रकाश हुआ है। सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग की पर्याय उससे प्रगट हुई है। राग से या पुण्य से या संयोग से या निमित्त को प्राप्त करके, वह सिद्धपद की पर्याय प्रगट नहीं होती। समझ में आया?

अब वे कर्मविजयजिन है। है न? .... कर्मविजय—कर्म की विजय कर ली है। **अब वह जिनेन्द्र परमात्मा के स्वभाव के साथ प्रगट है।** अपना सिद्धपद प्रगट हुआ है। **जिनेन्द्र की जय हो** अन्त में कहते हैं। **जिनको मुक्ति से प्रेम है।** प्रेम का अर्थ लीन है। परमात्मा सिद्ध अपनी शुद्ध निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसमें लीन है। तो मोक्षमार्ग में यह गाथा बतायी, उसका यह अर्थ है कि सिद्धे सर्वसिद्धे सर्व सिद्धपद की प्राप्ति हो गयी है। किस प्रकार?—कि अन्तर गुप्त चिदानन्द भगवान गुप्त का आश्रय—मेल करने से। राग-द्वेष और पुण्य-पाप के साथ मेल करने से नहीं। वह तो दुमेल हुआ। समझ में आया? व्यवहार होता है, जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं। यह पण्डित लोग तो गजब अभी... यह निश्चय... निश्चय... यह तो निश्चय देखो उसमें यह है।

अपना स्वरूप एक समय में गुप्त पड़ा है भगवान चैतन्यचमत्कार सूर्य अखण्ड पूर्ण, उसके साथ अन्तर में एकाकार होकर, मेल करके जिन का प्रकाश हुआ है। अनन्त वीतराग की दशा सर्वज्ञ को ऐसे प्रगट हुई है। तो कहते हैं कि सिद्धं सव्व सिद्धं। उन सिद्ध भगवान ने अपनी पर्याय में पूर्ण सिद्धि की है। समझ में आया? सर्व सिद्धि प्राप्त कर ली है। वापस ... **जिन्होंने...** अंग अर्थात् द्वादशांग वाणी का ध्येय सिद्ध कर लिया है। द्वादशांग वाणी में यह कहा है कि तेरी वीतरागदशा (प्रगट कर)। कल आया था न, भाई! अपने वह चार अनुयोग। श्रावक अधिकार में। चार अनुयोग हैं। प्रथमानुयोग है—कथानुयोग है, उसका अभ्यास है, करणानुयोग है, पुण्य-पाप की क्रिया, उसका अधिकार भी शास्त्र में चलता है। चारों अनुयोग। परन्तु उसका तात्पर्य क्या? कि वीतरागता प्रगट करना। सबका तात्पर्य यह है। अमृतचन्द्राचार्य पंचास्तिकाय में कहते हैं कि बारह अंग का तात्पर्य वीतरागभाव है। अनेक प्रकार के सब कथन चले हों, परन्तु उसमें से निकालना क्या? कि राग और संयोग की उपेक्षा और त्रिकाल गुप्त चैतन्य आनन्द की अपेक्षा। वह यह दवा है। नहीं आया तुम्हारा चिरंजीवी? समझ में आया? यह दवा है, दवा। दवा करते हैं न पूरे दिन। समझ में आया?

सिद्ध अपनी द्वादशांग वाणी का ध्येय सिद्ध कर लिया है। वह इसमें है, भाई! ज्ञानसमुच्चयसार। देखो, ५६ गाथा। ५६ है।

परम समयांग सुधं च, परम तत्त्वं च सार्धयं।
तत्त्व कार्य पदार्थं च, दर्वं सुधं समं धुवं॥५६॥

उत्कृष्ट आत्मा... '**पर**' समय शब्द पड़ा है न? '**पर**' अर्थात् उत्कृष्ट। '**पर**' अर्थात् उत्कृष्ट होता है। '**समय**' अर्थात् आत्मा। **उत्कृष्ट (अपना) आत्मा यही शुद्ध द्वादशांग का सार है।** अपनी निर्मल रागरहित वीतराग पर्याय स्वभाव के आश्रय से प्रगट करना, वही शुद्ध द्वादशांग का सार है। '**अंग सुधं**' है न? '**अंग**' में शुद्ध सार यह ही है। **द्वादशांग में सात तत्त्व...** बारह अंग में भगवान ने सात तत्त्व कहे हैं। **पाँच अस्तिकाय...** कहे हैं, **नौ पदार्थ...** कहे हैं। नौ समझे? यह आस्रव में से दो निकालना। आस्रव में से पुण्य-पाप को भिन्न करने से नौ होते हैं। वरना सात होते हैं। सात तत्त्व, नौ पदार्थ, **छह द्रव्य और पंचास्तिकाय...** देखो, पीछे छह द्रव्य आये। प्रयोजनभूत। उसमें '**सार्धयं**' **प्रयोजनभूत उत्कृष्ट तत्त्व...** सबका अभ्यास करना। छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ पदार्थ, सात तत्त्व। समझ में आया? शोभालालजी! यह छह द्रव्य के नाम भी न आते हों, लो! क्या करे? नौ पदार्थ के नाम भी नहीं आते।

मुमुक्षु : धर्म करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु धर्म कहाँ से करे? समझे बिना?

तो कहते हैं कि इन सबमें, इन सबमें क्या है? **प्रयोजनभूत... 'परम तत्त्वं च सार्धयं'** है। सबमें प्रयोजनभूत यह भगवान अकेला अपना उत्कृष्ट तत्त्व है। वह बारह अंग का सार है। है? '**सुधं समं धुव**' **जो शुद्ध है...** जो '**समं**' अर्थात् वीतरागभावरूप है। समतारूप कहा है। वीतरागभावरूप है। **तथा अविनाशी है, उनका वर्णन है।** इन सबमें यह वर्णन है। बारह अंग में, सात तत्त्व में, नौ पदार्थ में, पंचास्तिकाय में, छह द्रव्य में कथन है सही सबका, परन्तु उसमें से (यह) निकालना। उसका वर्णन अपना स्वरूप राग विकल्प भेद से रहित अकेला चिदानन्द गुप्त आनन्दकन्द है, उसका आश्रय करना, वही उसका—बारह अंग का सार है। ऐसा उपदेश देना, उसका नाम उपदेश शुद्ध कहा जाता है। समझ में आया? देरियाजी! जरा यह थोड़ा-थोड़ा ले जाना, तुम यह बुद्धिवाले व्यक्ति हो तो। क्या चीज़ पड़ी है? तारणस्वामी क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं और

हम तारणस्वामी को मानते हैं। मानते हैं, परन्तु क्या माने?

मुमुक्षु : वह तो भगवान को माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या भगवान? ऐसा भगवान कहे, परन्तु क्या भगवान? तुझे अभी भगवान की पहिचान तो हुई नहीं। भगवान क्या कहते हैं, तत्त्व क्या कहते हैं, मार्ग क्या कहते हैं, सार क्या कहते हैं? किसकी उपेक्षा करना, किसकी अपेक्षा करना— इसकी तो खबर नहीं तो भगवान कहते हैं, वह कहाँ से आया तुझे? सेठी! भाई! कड़क बात तो है जरा।

द्वादशांग वाणी में जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, इन सात तत्त्वों का पुण्य-पाप मिलाकर नौ पदार्थों का जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छह द्रव्यों का व काल रहति पाँच अस्तिकायों का कथन है। तथा साथ ही परम शुद्ध साम्यभावरूप अविनाशी परमात्म तत्त्व का कथन है। द्वादशांग वाणी का सार तो यही है। उसमें आत्मा... वे चार अनुयोग आये थे न श्रावक अधिकार में? चारों ही अनुयोग हैं सही। बात बहुत लम्बी चलती है, उसमें चरणानुयोग में, कथानुयोग में। परन्तु अन्त में उसका सार क्या है? अन्तर चिदानन्द प्रयोजनभूत ज्ञायक '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' जो त्रिकाल ज्ञायकभाव है, उसका आश्रय करना और दूसरे का आश्रय छोड़ देना, ऐसा उपदेश का शुद्धसार भगवान ने कहा, ऐसा यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि हम कहते हैं। हमारे घर की बात नहीं करते। समझ में आया?

यह है न कहीं श्रेणिक राजा का? नहीं श्रेणिक राजा को कहा ऐसा कहीं है न? ... है? **श्री जिनेन्द्र के अपनी आत्मा... जिनेन्द्र का कोई अद्भुत पद प्रगट हुआ है।** जिनमन्दिर अर्थात् अपना मन्दिर, हों यह। **कमल... जो मोक्ष साधक कमल समान मुनिजन थे।** जैसे कमल खिलता है न? वैसे अपना आत्मा अन्तर में से शक्तिरूप जो कमल पड़ा है, उसमें एकाग्र होकर खिल जाता है, पर्याय में खिल जाता है। **प्रसन्न होकर पूछने लगे कि जिनसमुदाय में क्षोभ क्यों है?** भगवान को पूछते हैं। **उत्तर मिला कि अरिहन्त केवली भगवान तीर्थंकर का आगमन हुआ है। यहाँ भाई ने यह प्रश्न किया है...** कि किस तीर्थंकर का जन्म हुआ? किसका क्षोभ है? सब दर्शन करने को

क्यों आते हैं ? उत्तर मिला कि अरिहंत केवली भगवान तीर्थंकर का शुभागमन हुआ है, ऊपर से जन्म हुआ है। श्रेणिक महाराज को महावीरस्वामी समवसरण देखकर बड़ी प्रीति पैदा हुई।' .... समझ में आया ? यहाँ भाई ने यह प्रश्न किया है।

और महावीर भगवान को किसी के साथ राग नहीं था। वीतराग थे। पद्मनाभी को शीव... तीर्थंकर महावीर से पूछने पर विदित हुआ कि श्रेणिक महाराज के भीतर पद्मनाभी आगामी प्रथम तीर्थंकर होनेयोग्य... उठा है। उनके गर्भ में पड़ा है तीर्थंकरपद। श्रेणिक राजा को भगवान ने कहा। समझ में आया ? वह आत्मा में परमात्मपद पड़ा है, ऐसा भगवान के मुख से निकला कि यह श्रेणिक राजा भविष्य में तीर्थंकर होंगे आगामी चौबीसी में। ऐसी कथानुयोग में बात चली है, वह यहाँ दृष्टान्तरूप से दी है। समझ में आया ?

श्रेणिक में भीतर ... या पुण्य दोनों। समझ में आया ? पुण्य भी ऐसा है और पवित्रता भी ऐसी है कि जिसके गर्भ में परमात्मा पड़े हैं, वह भविष्य में होगा और पुण्य के कारण से समवसरण आदि होंगे। भगवान के मुख से ऐसी वाणी श्रेणिक को सुनने को मिली। और सभा में सुना कि यह भविष्य में तीर्थंकर होगा... है न ? अब केवली भगवान को कोई माँगने की इच्छा केवली भगवान से नहीं रही। उन्होंने अपने भीतर क्षायिक समकित के साथ आत्मज्ञान में रमणता पाली। क्षायिक समकित लिया। देखो, कल पूछते थे न भाई! क्षायिक समकित भगवान के समीप में होता है। अकेले पंचम काल में भगवान नहीं तो क्षायिक नहीं होता। देखो, है न इसमें ? ... अन्दर में वास्तव में तो अन्दर की रमणता ऐसी प्राप्त की, उसमें से निकाला भाई। शीतलप्रसाद ने निकाला अर्थ में से। कि उन्होंने क्षायिक समकित प्राप्त कर लिया है। समझ में आया ? और स्वयं वीतरागभाव के प्रकाश की रमणता को पा चुके हैं। भगवान तो पा चुके हैं। तुझे भविष्य में पूर्ण वीतरागता हो जायेगी, ऐसी भगवान के मुख से निकली हुई बात है। ऐसा उपदेश श्रेणिक को भगवान ने कहा। समझ में आया ? उपदेश की शैली कहीं आयी थी। यह तो दूसरी बात है। उपदेश कहीं दिया, ऐसा है। श्रेणिक को उपदेश दिया। पहली गाथा है न ? दूसरी गाथा है।

....

...'मैं पायो जिनवर आपनो, मैं पाये स्वामी आपनो। ... मैं पाये चरण जिन आपनो।' अपना चरण स्वभाव है। 'मैं पायो' भगवान की वाणी में ऐसा आया था, ऐसा सुनकर पाया। देखो, 'इन्द्र को या इन्द्रभूति गौतम गणधर को' दूसरी गाथा, भाई! मूल पाठ में है न? ... 'और धर्मेन्द्र को' यह धर्मेन्द्र। 'गौतम गणधर को और श्रेणिक राजा को जो धर्म का उपदेश दिया था, वह धर्म से आप पूर्ण हो।' भगवान को कहते हैं कि प्रभु! आपने जो उपदेश दिया था, वही दिया था, वह आपके पास पूर्ण है। 'आप आत्मारूपी कमल का अनुभव करते हुए रत हैं' पूर्णानन्द की प्राप्ति। कमल जैसे खिलता है और 'संकोच में हो कमल तब तो शक्तिरूप था।' पर्याय में जब हजार पंखुड़ी से कमल प्रगट हुआ, ऐसा अपना पारिणामिकभाव शक्तिरूप तो अन्दर पड़ा है। शक्तिरूप पारिणामिकभाव गुप्तरूप से शक्तिरूप, उसे पर्याय में एकाकार होकर प्रगट किया। उसमें आप रत हो। 'आप तारण तरण कमल हैं, अनन्त आनन्द में मग्न हैं। आपने परमात्मपद के साथ मोक्ष पाया है।' ऐसे आपने इन्द्र और गणधर के निकट कहा था, वह आपने प्राप्त किया है। शोभालालजी! यह इन्द्र और गणधर को श्रेणिक राजा के पास जो मार्ग कहा, वह मार्ग भगवान ने प्राप्त किया है, वही मार्ग दुनिया को कहा है। समझ में आया? हो गया न यहाँ? ५६वीं गाथा का ज्ञानसमुच्चय में आ गया।

अब यहाँ चलता है, देखो! **द्वादशांग वाणी का ध्येय सिद्ध कर लिया है...** ४९५। हे नाथ! परमात्मा और यह कहते-कहते चलता है तो मोक्ष का मार्ग, परन्तु कहते हैं कि द्वादशांग का सार तुमने सिद्धपद प्राप्त कर लिया है। ऐसा अपना सिद्धपद अन्तर स्वभाव में प्राप्त करना, वही मोक्षमार्ग है। उसे प्राप्त करना, उसका नाम मोक्षमार्ग है। दूसरा कोई राग को प्राप्त करना, व्यवहार को, निमित्त को, संयोग को प्राप्त करना (वह मोक्षमार्ग नहीं)। वह आता है, जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य तो अपना सिद्धपद और त्रिकाल गुप्त स्वभाव है, उसकी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान करके अनुभव-वेदन करके प्रगट पर्याय वीतरागता प्राप्त करना, वह द्वादशांग का सार कहा गया है। कहो, समझ में आया?

और '**दिगंतरं सिद्धं**' अब यह ज्ञान की महिमा जरा कहते हैं। **सर्व लोकालोक**

को ज्ञान द्वारा जान लिया है... केवलज्ञान में लोक और अलोक, तीन काल, तीन लोक सब एक पर्याय में जान लिया है, वही मोक्षमार्ग का सार है अथवा मोक्षमार्ग का फल है। समझ में आया? मोक्षमार्ग का फल कोई ऐसा नहीं कि स्वर्ग में गया और इन्द्रपद मिला और सर्वार्थसिद्धि में गया। यह मोक्षमार्ग का फल नहीं है। यह तो बीच में राग आता है, उसके बन्ध का फल है। अपना केवलज्ञान सूर्य भगवान में एकाकार होकर आपने लोकालोक (जान लिया)। लोकालोक है या नहीं? सर्वज्ञ भगवान जानते हैं, दुनिया में है कहीं लोकालोक? लोक चौदह ब्रह्माण्ड, अलोक अनन्त-अनन्त। चौदह ब्रह्माण्ड में छह द्रव्य पड़े हैं, पंचास्तिकाय पड़े हैं, वह सर्वज्ञ भगवान के अतिरिक्त दूसरे में होता नहीं। जिनवर परमात्मा त्रिकाल जो सर्वज्ञ ने कहा श्रेणिक, इन्द्र के निकट, वह उन्होंने केवलज्ञान में जाना, वही यहाँ कहा। '**दिगंतरं सिद्धं**' लोक और अलोकाकाश सबको जान लिया है। समझ में आया?

'**सिद्धं अर्थ तिअर्थं**' पदार्थ। पदार्थ में पदार्थ सार वह आत्मा है। समझ में आया? **सिद्ध परमात्मा ने अपने प्रयोजनीय रत्नत्रय स्वरूप को प्राप्त कर लिया है।** '**अर्थ तिअर्थं**', पदार्थ में पदार्थ हो तो आत्मा एक पदार्थ है। ऐसा पूर्णानन्द पदार्थ आपने प्राप्त कर लिया। ऐसा हमारा आत्मा तुम्हारे साथ मिलता है क्या? हम आदर्शरूप से आपको देखते हैं कि आपमें राग नहीं, पुण्य नहीं, विकल्प नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं। तो आदर्शरूप से .... हमारे में भी नहीं। ऐसी अपने अन्तर में दृष्टि और रमणता करता है तो हमको भी मोक्षमार्ग से सिद्धपद प्राप्त होगा। दूसरे पद से प्राप्त होगा नहीं। कहो, समझ में आया?

'**समर्थ्यं समय दिस्टि अन्मोयं।**' सामर्थ्य अर्थात् वीर्य लिया है। **उनकी आत्मा में ऐसा वीर्य प्रगट है कि वे** '**अन्मोयं**' अर्थात् वहाँ अनुमोद का अर्थ मोद किया है। मोद अर्थात् आनन्द। मोद, मोद का अर्थ आनन्द। प्रमोद आता है। प्रमोद कहो, आनन्द कहो, मोद कहो। यह अनुमोद। आत्मा पूर्णानन्द था अन्तर में, उसे अनुसरकर मोद अर्थात् आनन्द प्रगट किया है। समझ में आया? परमानन्द की दशा उन्होंने प्रगट कर ली। वे आनन्दमय दृष्टि को रखनेवाले हैं। आपके पास तो आनन्दमय दृष्टि है।

सिद्ध भगवान ने रत्नत्रय धर्म का सार प्राप्त कर लिया है। आत्मा से परमात्मा हुए हैं। देखो, आत्मा से परमात्मा हुए हैं। कोई व्यवहार विकल्प से या निमित्त से हुए नहीं। **नित्य परमानन्द में मग्न हैं।** आप तो अनन्त वीर्य से परम मग्न हो **और अनन्त वीर्य के धारी हैं।** ऐसा ही हमारा स्वभाव आपने बताया। आपने पर्याय प्रगट की वही हमको उपदेश दिया, ऐसा आगे कहेंगे। हमारी पर्याय ऐसी प्रगट हुई, वह हमको आपने तो उपदेश किया। ऐसी पर्याय स्वभाव के आश्रय से प्रगट करो, ऐसा आपका उपदेश है। दूसरा उपदेश है नहीं। समझ में आया?

४९६। मिथ्यात्व जैसा... है कहीं। मिथ्यात्व जैसा दुःख नहीं और समकित जैसा... कहो, देरियाजी! महासिद्धान्त। '**मिथ्यात्वं परमं दुःखं**' निर्धनता दुःख नहीं, रोग दुःख नहीं। ऐई! सेठ! रोग दुःख नहीं, निर्धनता दुःख नहीं, सधनता सुख नहीं, निरोगता सुख नहीं। '**मिथ्यात्वं परमं दुःखं, सम्यक्त्वं परम सुखं,... शुद्ध सम्यक्सारभयं।**' २९६। मिथ्यादर्शन परम दुःख का कारण है। वह तो ... मिथ्यात्व परमं दुःखं। यहाँ तो तारणस्वामी ने कारण-फारण भी नहीं (ऐसा लिया है)। .... मिथ्यात्व परमं दुःखं। भगवान आत्मा एक समय में चैतन्यसूर्य भगवान पूर्णानन्द का कन्द, उसकी विपरीत श्रद्धा, राग और पुण्य और निमित्त और संयोग से मुझे लाभ होगा, मैं अल्पज्ञ हूँ, मैं राग का करनेवाला हूँ, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वही दुःख है। देरियाजी!

निर्धनता वह दुःख नहीं, रोग दुःख नहीं, बेइज्जती दुःख नहीं, सन्तानहीनता दुःख नहीं। वांझिया समझते हो? पुत्र न हो वह। वांढा। वांढा समझे? स्त्री न हो। वह दुःख नहीं। मिथ्यात्व परमं दुःखं। अपना शुद्ध आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु से सात तत्त्व, नौ तत्त्व पदार्थ इत्यादि की विपरीत मान्यता, विपरीत मान्यता (वह दुःख है)। फिर बाह्य त्यागी हो। योगी हो, जंगल में बसनेवाले नग्न आदि हो, समझ में आया? या दिगम्बर नग्न मुनि अट्ठाईस मूलगुण को पालनेवाला जैन साधु हो, परन्तु उससे मुझे धर्म होता है, ऐसी दृष्टि जहाँ राग के ऊपर पड़ी है, ऐसा मिथ्यात्व है तो कहते हैं कि वह परम दुःख है। ओहोहो! यह दुःखी? जंगल में बसे, स्त्री नहीं, परिवार नहीं, कुछ नहीं, आहार-पानी ले परन्तु एक ... खा ले, निर्दोष आहार-पानी, भिक्षा के लिये जाये महीने के

अपवास हों, निर्दोष आहार-पानी ले। दृष्टि में परमानन्द प्रभु आत्मा नहीं। दृष्टि में रही है अल्पज्ञता या राग या संयोग। उसके अस्तित्व का स्वीकार किया, अपने पूर्णानन्द के अस्तित्व का स्वीकार छोड़ दिया। ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। कहो, सेठ! यह तुम्हारे पैसे से सुख नहीं कहा। ऐई! शोभालालजी! ऐसा कहते हैं कि तारणस्वामी के पास पैसा नहीं था तो ऐसा ही कहे न! ऐसा कहा है? ऐसा नहीं। पैसा पैसे के पास। वह पैसे में तो दुःख भी नहीं और सुख भी नहीं।

यहाँ तो आत्मा आनन्दमूर्ति पूर्णानन्द प्रभु, उसका विपरीत अभिप्राय। मिथ्यात्व के अनेक प्रकार हैं। गृहीत मिथ्यात्व, अगृहीत मिथ्यात्व, एकान्त मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, ऐसे मिथ्यात्व के बहुत भेद हैं। सब मिथ्यात्व के जो परिणाम, वही परम दुःख है, उत्कृष्ट दुःख है। समझ में आया? और सम्यक्त्वं परमं सुखं। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द अनन्त गुण का एकरस रूप ऐसी अन्तर की दृष्टि सम्यक् हुई, अनुभव हुआ, सम्यग्दृष्टि, वह परम सुख। बाहर में फिर हरिजन हो, नारकी हो, स्वर्ग का देव भवनपति में हो, तिर्यंच में पशु हो। वह सम्यक्त्वं परम सुखं। अपना शुद्ध प्रभु राग से निराला अन्तर में प्रतीति दृढ़ श्रद्धा अनुभव में हुई, वह परम सुखी है। बाहर में निर्धनता हो, पच्चीस रुपये वेतन भी न मिलता हो, शरीर काला हो, इज्जत कुछ न हो, मकान-बकान रहने के लिये न हो, तुम्हारे जैसा बँगला बड़ा। सेठ! तो भी कहते हैं कि वह परम सुख है। बराबर है? महेन्द्रभाई! परम सुख है। बाहर में क्या सुख-दुःख है? मनसुखभाई! आहाहा!

'मिथ्यात्वं परमं दुःखं, सम्यक्त्व परमं सुखं,...' ... इसलिए मिथ्यादर्शन का त्याग करना और सम्यक् सारभयं। सम्यग्दर्शन को अपना साथी बनावे। अपना साथी सम्यग्दर्शन को बनावे कि जिससे अपना सुख होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति हो। उसकी तो कीमत नहीं होती। मिथ्यात्व क्या और सम्यक् क्या? उसकी कुछ खबर नहीं होती। जरा बाहर का राग त्याग किया, राग मन्द हुआ, बाहर पुण्य प्रगट हुआ, लाखों लोग माने, ओहोहो! वीतरागो सुखी, आता है न? ... ऐगंत सुखी मुनि वीतरागी। क्या? त्यागी होकर बैठे, वे वीतरागी मुनि। धूल में भी नहीं। धर्म का त्यागी है वह। समझ में

आया? कहते हैं कि मिथ्यात्व समान दुःख नहीं, समकित समान सुख नहीं। ओहो! तारणस्वामी पुकार करते हैं, देखो! अरे आत्मा! .... यह मिथ्यात्वदृष्टिपने को छोड़ दो और ... शुद्ध सम्यग्दर्शन को साथ में लो कि जिससे ... तुझे पूर्ण केवलज्ञान प्राप्त हो जाये। समझ में आया? बहुत सरस बात है। समझे? यह त्याग की बात थी न इसलिए। ... ज्ञानसमुच्चयसार में है न त्याग। कितने पृष्ठ पर है? ... ३६। देखो। यह त्याग क्या कहते हैं। पृष्ठ-३६, गाथा-६६। ज्ञानसमुच्चयसार। है? लिख लेना। भाई! सब गाथा सार-सार आती है, हों! सार-सार निकालते हैं। क्या कहते हैं, देखो! तारणस्वामी कहते हैं कि प्रत्याख्यान पूर्व में क्या कहा है? भाई! यह प्रत्याख्यान पूर्व है न। चौदह पूर्व है चौदह पूर्व। दृष्टिवाद में चौदह पूर्व है। तो चौदह पूर्व में ... एक-एक में लोकबिन्दु ... उसमें प्रत्याख्यान पूर्व में क्या कहा है, उसका सार क्या है, यह बात करते हैं। ६६।

प्रत्याषानं च पूर्वं च, परोष्यं प्रत्यष्यं धुवं।
प्रत्याष्यानं ममलं सुधं, कर्मं षिपति बुधै जनैः॥६६॥

प्रत्याख्यान नामा पूर्व में परवस्तु के त्याग का वर्णन है... भगवान का वर्णन प्रत्याख्यान पूर्व में त्याग का वर्णन है। **'परोष्यं प्रत्यष्यं धुवं।' यह त्याग परोक्ष व प्रत्यक्ष दो प्रकार का है,...** एक परोक्ष त्याग, एक प्रत्यक्ष त्याग। देखो। **जिसमें प्रत्यक्ष त्याग निश्चय त्याग है...** यह सच्चा त्याग है। **'प्रत्याष्यानं ममलं' प्रत्यक्ष त्याग निर्मल शुद्ध है....** कौन सा त्याग? राग और विकल्प का अभाव होकर स्वरूप में आनन्द की स्थिरता की प्राप्ति हो, उसका नाम राग का, विकार का अन्तर रमणता में त्याग हुआ, वही निश्चय त्याग है। समझ में आया? कुटुम्ब-कबीला छोड़ दिया, नग्न हो गया, त्याग हो गया तो निश्चय त्याग हो गया, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? निश्चय त्याग तो भगवान पूर्णानन्द की डली—गाँठ उसमें राग के विकल्प उत्पन्न न हों, निर्विकल्प स्थिरता में अन्दर लीन हो जाना, उसे यहाँ तारणस्वामी प्रत्यक्ष निश्चय त्याग कहते हैं। देरियाजी!

'प्रत्याष्यानं ममलं' प्रत्यक्ष त्याग निर्मल शुद्ध है.... 'कर्मं षिपति बुधै जनैः' यह बुद्धिमानों के कर्मों का क्षय करता है। अनुभव द्वारा। परोक्ष त्याग में तो राग की मन्दता है, राग की मन्दता। जरा व्यवहार त्याग। अशुभ राग का त्याग, उसमें बाह्य निमित्त से

छूट गया। वह राग की मन्दता व्यवहार त्याग है। उसमें तो पुण्यबन्ध होता है। समझ में आया? पंच महाव्रत के विकल्प आदि आते हैं, वह व्यवहार त्याग है। व्यवहार त्याग, वह पुण्यबन्ध का कारण है... और अन्तर में रागरहित चिदानन्द स्थिरता की रमणता जमती है, उसमें राग के अंश की पुण्य की उत्पत्ति भी नहीं होती, ऐसी दशा को प्रत्याख्यान पूर्व में श्री भगवान त्रिलोकनाथ देवाधिदेव ने निश्चय त्याग कहा है। तारणस्वामी कहते हैं कि ऐसे पूर्व में ऐसा कहा है, ऐसा हम कहते हैं। कहो, देरियाजी! वस्त्र बदल दिये और हो गये त्यागी। (ऐसा नहीं है।) वाँचे तो खबर पड़े न!

चौदह पूर्व में प्रत्याख्यान नाम के पूर्व में पापों का त्याग कैसे हो, इसका यम नियम रूप से कथन है। यह त्याग दो तरह का है—एक परोक्ष या व्यवहार प्रत्याख्यान, दूसरा प्रत्यक्ष या निश्चय प्रत्याख्यान। व्यवहार त्याग में आहार त्याग, रस त्याग आदि किया जाता है, उसको पुण्य कर्म का मुख्यता से बन्ध होता है। मुख्यरूप से यह ही है। यह ही है, ऐसा। **निश्चय प्रत्याख्यान में केवल अपने एक शुद्धात्मा के सिवाय और सर्व पर पदार्थों का त्याग किया जाता है। जिसमें आत्मानुभव पैदा हो जाता है। यही वह ध्यान की अग्नि है, जिससे भेदज्ञानी महात्माओं के कर्मों का क्षय होता है।** निश्चय त्याग से कर्म का (क्षय होता है)। निश्चय का अर्थ? निर्विकल्प रागरहित स्वरूप की रमणता का नाम निश्चय त्याग, निश्चय प्रत्याख्यान कहा जाता है। कहो, बराबर है? नीचे है, देखो!

नन्तानंत स्वयं दिस्टं, धरयंति धर्मं, धुवं।
धर्म सुक्लं च ध्यानं च, सुध तत्त्वं सार्धं, बुधैः ॥६७॥

यह भाषा ली है। नियमसार में आता है न भाई? धर्म और शुक्ल, दोनों। पंचम काल में नहीं। अब सुन तो सही। ऐसा कि ऐसा क्यों कहा? अभी तो शुक्लध्यान है नहीं। यह तो नियमसार में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान ध्याना। है नहीं उसे किसलिए कहते हैं? अब सुन तो सही। पहले दृष्टि तो कर कि धर्म और शुक्लध्यान हो सकता है। आत्मा करनेवाला है, उसमें कोई दूसरा करनेवाला नहीं। चौथा काल आयेगा और काल आयेगा और संहनन मजबूत मिलेगा, तब शुक्लध्यान होगा, ऐसा नहीं। शुक्लध्यान स्वयं से होता है, यह सिद्ध करना है। समझ में आया?

देखो, **बुद्धिमान भेदज्ञानी शुद्ध आत्मतत्त्व का साधन करते हैं... 'बुधैः सुध तत्त्वं सार्धं'** है न? **वही धर्मध्यान व शुक्लध्यान....** साध्य में साधन क्या? कि **धर्मध्यान व शुक्लध्यान का अभ्यास है...** यही ध्यान है, यही त्याग है और यही साधन है। धर्मध्यान कोई विकल्प नहीं। कोई कहते हैं न। ... धर्मध्यान के भेद? वह भेद है, वह विकल्प विकार करता है, वह अलग वस्तु है, वह मूल धर्मध्यान नहीं, व्यवहार धर्मध्यान है। व्यवहार अर्थात् पुण्यबन्ध का कारण है। अन्तर चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द में दृष्टि देकर लीन होना, उसका नाम भगवान धर्मध्यान कहते हैं। समझ में आया?

उस ध्यान में... 'नन्तानंत स्वयं दिस्टं' अनन्तानन्त गुणों का धारी आत्मा स्वयं अनुभव में आता है.... देखो, समझ में आया? ध्यान में क्या विषय आया? अनन्तानन्त गुण का धारी। एक द्रव्य, मेरे अनन्त... अनन्त... अनन्तानन्त गुण। एक समय में मेरा एक आत्मा अनन्तानन्त गुण का धारी। अनन्त शक्तियाँ। अनन्त द्रव्यों के बीच रहता है, अनन्त पदार्थों के बीच रहने पर भी अपना सत्त्व अस्तित्व कभी खोया नहीं। पर से अन्यत्व अनन्त धर्म आदि और अनन्त गुण आदि धर्म का धारी आत्मा अपनी दृष्टि श्रद्धा-ज्ञान में आता है। कहो, ऐसे एक आत्मा में अनन्तानन्त गुण हैं, वे कहाँ होंगे सर्वज्ञ के अतिरिक्त? जैन परमेश्वर के अतिरिक्त यह बात तीन काल में कहीं नहीं है। एक निगोद का इतना शरीर, उसमें असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव, एक जीव में अनन्तानन्त गुण, एक-एक गुण की एक-एक पर्याय और एक-एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। ... सेठ कल कहते थे... समझ में आया?

एक आत्मा ऐसे शरीर में देखो तो एक इतना शरीर, उसमें असंख्य शरीर औदारिक। एक टुकड़ा लो आलू का, कन्दमूल का, मूला का, मूला का। कांदा होता है न सफेद, उसमें असंख्य औदारिकशरीर। एक औदारिक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे जीव। एक जीव में अनन्तानन्त गुण। देखो, क्या कहते हैं? देरियाजी! एक जीव में अनन्तानन्त गुण, ऐसा सम्यग्दृष्टि को श्रद्धा-ज्ञान में आता है। और एक गुण की एक समय में एक पर्याय और एक पर्याय के भाग करो अविभाग प्रतिच्छेद तो एक पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद है। यह जरा सूक्ष्म बात है। समझ में आया? ऐसे

अनन्तानन्त गुणों का धारी आत्मा स्वयं अनुभव में आता है.... है न ? **'नन्तानंत स्वयं दिस्टं'** ऐसा है न पाठ ? देखो ! **'नन्तानंत स्वयं दिस्टं'** स्वयं कैसे लिया है ? कि अपना आत्मा पूर्ण अनन्त गुण का धारी स्वयं अनुभव में आता है। कोई विकल्प के आश्रय से, कुछ पर की अपेक्षा रखकर अनुभव में आता है, ऐसा नहीं है। स्वयं अपनी अपेक्षा रखकर अनन्तानन्त गुण का धारी दृष्टि—प्रतीति में आता है।

मुमुक्षु : महाराज ! अनन्तगुण का धारी या अनन्तानन्त गुण ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तानन्त कहो या अनन्त कहो, वह तो अनन्तानन्त है। बहुत संख्या है। एक वस्तु है, वहाँ अनन्तानन्त परमाणु है या नहीं दूसरे ? दूसरे अनन्तानन्त आत्मा हैं या नहीं ? तो उससे रहित है या नहीं ? तो एक-एक में अनन्तानन्त अन्यत्व धर्म पड़ा है। यह जरा सूक्ष्म बात है। ऐसे अनन्तानन्त गुण एक आत्मा में पड़े हैं। ऐसे-ऐसे अनन्त आत्मा हैं, ऐसा सम्यग्दृष्टि को प्रतीति में आता है। अज्ञानी को प्रतीति में नहीं आता। समझ में आया ? अभ्यास करे नहीं, विचार करे नहीं, मनन करे नहीं और अकेले बाहर में गोते खाये और ऐसा किया और ऐसा किया और ऐसा लिया और ऐसा दिया। मोतीरामजी ! अभी तक ऐसा किया या नहीं ? प्रतिमा ली। सात प्रतिमा ली। ले लो प्रतिमा। परन्तु प्रतिमा कहाँ से आयी ? गृहस्थ व्यक्ति है, वृद्धावस्था हो गयी, दस पुत्र हैं। नौ पुत्र के विवाह किये। एक पुत्र ब्रह्मचारी रहा—बालब्रह्मचारी। दो हजार एकड़ तो जमीन है। बड़ा गृहस्थ है। अब निवृत्ति ले लो। ले लो प्रतिमा। परन्तु कहाँ से आयी प्रतिमा ?

मुमुक्षु : महाराज ने दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : महाराज ने दी। महाराज को खबर नहीं कि प्रतिमा कैसे आती है। समझ में आया ?

एक समय में आत्मा अनन्तानन्त गुण का पिण्ड ध्रुव पड़ा है। उस ध्रुव पर अभेद दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त दूसरे उपाय से होता नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! **'धरयंति धर्मं, धुवं।' जो ध्यान निश्चय आत्मधर्म में स्थापित किया है।** देखो, **'धरयंति धर्मं, धुवं।'** अन्तर स्थिर ध्रुव आत्मधर्म में (ध्यान) स्थापित किया

है। राग में और विकल्प में ध्यान है, उसे ध्यान नहीं कहा जाता। निश्चय धर्मध्यान यही है। नामस्मरण करना, भक्ति करना, ऐसा करना णमो अरिहंताणं.... णमो अरिहंताणं.... यह धर्मध्यान नहीं। क्या करना?

मुमुक्षु : अभी तक ऐसा ही बताया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : बताया था और तुमने अभी तक ऐसा मान लिया था। ऐसा माना था या नहीं? किसने ऐसा माना था? तुमने। **जो ध्यान निश्चय आत्मधर्म में स्थापित किया है।**

भावार्थः—ज्ञानीजन धर्मध्यान व शुक्लध्यान दोनों में पर-पदार्थ से विमुख होकर, एक अपने शुद्ध आत्मध्यान का अभ्यास करते हैं, यही वास्तव में मोक्ष मार्ग साधक धर्म है, जो साधक जो निज स्वाभाविक अनन्तगुणों के धारी आत्मा में स्थापित कर देता है। ..... किसी जगह थोड़ा अन्तर है, परन्तु बात रखी है जैन की। दूसरे के साथ कुछ मेल नहीं किया। दूसरों ने तो बहुत गड़बड़ी की है लेखन में। क्या आया देखो, यह ४९५ गाथा हुई।

४९६। उपदेशशुद्धसार।

तारन तरन समर्थं, उवइट्ठं इस्ट दिस्ट सुद्धं च।
अन्मोयं सहकारं, उवएसं विमल कम्म गलियं च॥४९६॥

क्या कहते हैं? सिद्ध भगवान का स्वभाव तारणतरण है। ऐसे अपना स्वभाव तारणतरण है, ऐसा कहते हैं। **और वे अपने निज शुद्धात्म भावों के द्वारा संसार से पार हुए हैं।'** सिद्ध भगवान अपने शुद्ध उपयोग की परिणति से संसार से पार हुए हैं। **वही स्वभाव दूसरों को भी तारने में समर्थ है।** समर्थ का अर्थ दूसरे को लक्ष्य कराते हैं कि हमारी पर्याय हमारे आश्रय से इतनी निर्मल हुई तो तुम भी इस प्रकार से तुम्हारे आश्रय से प्रगट करो। यह ही उनका उपदेश कहा जाता है। वाणी भले न हो। समझ में आया? **वही स्वभाव दूसरों को भी तारने में समर्थ है। दूसरे उसी स्वभाव को पाकर संसार से पार हो जाते हैं।** सिद्ध भगवान का लक्ष्य करके जो उनमें है, वही मुझमें है। जो उनमें से निकल गया, वह मुझमें नहीं। सिद्ध में जो नहीं, वह मुझमें नहीं; सिद्ध में जो है, वह

मुझमें है। ऐसे आदर्श सिद्ध भगवान को अन्तर में बनाकर जो **सिद्ध भाव को पाकर संसार से पार हो जाते हैं। वह स्वभाव की दृष्टि करके लीन होकर अपनी पर्याय को पूर्णानन्द की प्राप्ति कर लेते हैं।**

'दिस्ट सुद्धं' देखो, अब कहते हैं। **वह अपने शुद्ध स्वभाव से इसका उपदेश दे रहे हैं....** उपदेश देने का अर्थ क्या? कि पूर्णानन्द की प्राप्ति होती है। भाई! देख लो। हमारा पूर्ण स्वभाव प्रगट हुआ, ऐसा तुम्हारा है। ऐसा तुम प्रगट करो तो हमारा उपदेश यही आया। समझ में आया? उपदेश के देनेवाले भी क्या कराते हैं? लक्ष्य कराते हैं। सिद्ध भगवान में पूर्ण आनन्द, अनन्त ज्ञानादि प्रगट हुए तो कहते हैं कि लक्ष्य कर ले। ऐसी दशा होना, उसका नाम परमात्मा है और वह दशा अन्तर में से आती है। शुद्ध उपयोग द्वारा, रमणता द्वारा वह दशा प्रगट होती है। शुभ और अशुभ, पुण्य-पाप से वह प्रगट नहीं होती। समझ में आया? शुभाशुभभाव का है कहीं? त्रिवेणी में डाला है, नहीं? त्रिवेणी में है न कहीं शुभाशुभभाव का। त्रिभंगी सार आठवाँ पृष्ठ। आठवाँ श्लोक है।

... शुभ की भावना करने से शुभभाव होता है। उस पुण्य भाव से तो शुभभाव होता है। अशुभभाव में ठहरने से अशुभभाव होता है। वह सब वास्तव में तो अशुद्ध है। शुभ और अशुभभाव, दोनों अशुद्ध हैं। ... और मिथ्यात्व से और समकित से मिला हुआ मिश्रभाव है। किंचित् श्रद्धा सच्ची और कहीं खोटी, ऐसा मिलकर ऐसे तीन प्रकार के भाव कर्म आस्रव के कारण हैं। देखो, क्या कहते हैं? शुभ और अशुभभाव कर्म आस्रव के कारण हैं। क्या? शुभ पंच महाव्रत के परिणाम, बारह व्रत के परिणाम मुनि को होते हैं, परन्तु वह कर्म के आस्रव का कारण है। समझ में आया? त्रिभंगी। ... आस्रव आता है। नये परमाणु आते हैं। उसमें कुछ शुद्धि होती नहीं। शुभभाव हो या अशुभ हो, दोनों को अशुद्ध कहते हैं। और अशुद्ध से कर्म के दल आते हैं। परमाणु बँधते हैं, उसमें आत्मा के अबन्ध परिणाम नहीं होते। बहुत स्पष्टीकरण किया है परन्तु कोई ... मिश्र अर्थात् मिथ्यात्वभाव। मिथ्या—मिश्र दृष्टि। मिश्र दृष्टि है न, वह भी आस्रव का कारण है। अथवा शुभाशुभ परिणाम एकसाथ थोड़े ... वह आस्रव का कारण है। उसमें कोई

संवर-फंवर है नहीं। संवर और निर्जरा, वह तो अपने शुद्ध आत्मा का अन्तर ध्येय, दृष्टि और अवलम्बन करने से निर्मल पर्याय होती है, उसका नाम संवर, निर्जरा है। शुभ और अशुभभाव दोनों आस्रव हैं। देरियाजी! थोड़ा शुभ-अशुभ ... राग की मन्दता है और थोड़ा... परन्तु वह भी आस्रव का कारण है। समझ में आया?

देखो, क्या कहा? कि **दूसरे उसके स्वभाव को पाकर संसार से पार हो जाते हैं। 'उवइट्ठं इस्ट दिस्ट सुद्धं च' वह अपने शुद्ध स्वभाव से इसका उपदेश दे रहे हैं....** यह सिद्ध उपदेश दे रहे हैं। इसका अर्थ? कि आदर्श ले ले हमारा। हम सिद्धपद की पर्याय अन्तर शुद्ध उपयोग से प्राप्त की है। उसका लक्ष्य कर। यही हमारा उपदेश है। दूसरा उपदेश नहीं, विकल्प नहीं, वाणी नहीं। **शुद्धोपयोग की दृष्टि ही हितकारी है... 'उवइट्ठं इस्ट दिस्ट सुद्धं च'** शुद्ध उपयोग। अपने आत्मा में पहले निश्चय-निर्णय करे सम्यग्दर्शन और तदुपरान्त शुद्ध उपयोग से रमना, वही सिद्ध पर्याय की प्राप्ति है। हमने वह प्राप्त किया है तो हमारा उपदेश यह है। उपदेश का अर्थ हमारा लक्ष्य कर तो हमारा ध्येय जो हमने प्रगट किया, वह तुझे प्रगट होगा।

'अन्मोयं सहकारं' क्या कहते हैं? **इसी दृष्टि में परमानन्द का सहयोग है।** सहकार शब्द आया न? **इसी दृष्टि में परमानन्द का सहयोग है।** शुद्ध उपयोग की दृष्टि करने से उसमें परमानन्द का साथ है। साथ में आनन्द आता है शुद्ध उपयोग में। शुभाशुभ उपयोग में दु:ख होता है।

मुमुक्षु : आकुलता होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता है। शुभ-अशुभ परिणाम दोनों आकुलता है। आकुलता का साथ है उसमें। और अपना शुद्ध चैतन्यद्रव्य... पहले श्रद्धा, ज्ञान, तो पक्का करे। श्रद्धा, ज्ञान का ठिकाना नहीं, उसे सम्यग्दर्शन कहाँ से होगा? और चारित्र कहाँ से होगा? श्रद्धा का ही ठिकाना नहीं कि यह क्या चीज़ है और कैसे प्राप्त होती है? ऐसा होता है, ऐसा होता है, ऐसा होगा। दखल... दखल... दखल... अनादि काल से करता आया है। समझ में आया? जरा सा दूसरे का थोड़ा त्याग देखे तो कहे, ओहोहो! हम त्याग कर सकते नहीं, इतना तो त्याग किया इसने। अपने से तो अच्छे हैं। यहाँ तो कहते हैं, दृष्टान्त देते हैं।

बिगड़ा हुआ दूध वह फीकी छाछ से भी गयी-बीती है। दूध बिगड़ा हुआ हो न दो मण? बिगड़ा हुआ। छाछ होती है न छाछ? क्या कहते हैं? मठ्ठा—छाछ। मीठी छाछ में रोटी खायी जाती है। बिगड़े हुए दूध में नहीं चलती। और पीवे तो सब बिगड़ जाता है। लड्डू खाये हों, वे सब निकल जाते हैं। उल्टी हो जाती है। ऐसे त्यागी नाम धराकर जिसकी दृष्टि अत्यन्त विपरीत है, मान्यता विपरीत है, वह तो बिगड़ा हुआ दूध है और गृहस्थाश्रम में रहकर सम्यग्दृष्टि और सच्ची श्रद्धा करके रहता है, परन्तु वह मीठी छाछ है। समझ में आया? यह क्रम-क्रम से आगे चढ़कर केवलज्ञान लेगा। वह मोक्षमार्गी है। और बाह्य त्याग करके दृष्टि में विपर्यास—मान्यता में विपर्यास (वह) बिगड़ा हुआ दूध है। उल्टी करा दे ऐसी चीज़ है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि **इस दृष्टि में परमानन्द का सहयोग है।** यह किसलिए कहा? कि शुद्ध उपयोग में आनन्द आता है। शुभ-अशुभ उपयोग में आनन्द नहीं है। यह **शुद्धोपयोग रूपी उपदेश को जो अपने में धारण करते हैं...** ऐसा। जैसा सिद्ध में है, वैसा ख्याल में लेकर अपने में लक्षण बाँधते हैं कि मैं ज्ञान लक्षण से लक्ष्य होनेवाला हूँ। विकल्प आदि से प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। ऐसे **धारण करते हैं, उनके स्वभाव की साधना से कर्म गल जाते हैं।** लो! उनके कर्म गल जाते हैं अर्थात् नाश होते हैं। सिद्ध भगवान जो शुद्ध उपयोग स मुक्त हुए हैं, वही शुद्ध उपयोग मोक्ष के इच्छुकों को प्राप्त करना चाहिए। वही उनका सम्यक् उपदेश है। यह उपदेश शुद्धसार है या नहीं? यह उनका उपदेश शुद्ध है। जिसमें गड़बड़ी करे कि व्यहार से निश्चय होता है और निमित्त से निश्चय होता है और उससे ऐसा होता है, वह सब भगवान के घर का उपदेश नहीं है। उसके स्वच्छन्द के घर का उपदेश है। कुमार्ग को फैलानेवाला उपदेश है। मोतीरामजी!

४९७ (गाथा)।

दर्सति सव्व दर्स, दर्सयंति सुद्ध ममल मल मुक्कं।
अन्मोयं न्यान सहकारं, उवएसं च कम्म गलियं च॥४९७॥

यह मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है, हों! मोक्षमार्ग नाम है न इसमें? **सिद्ध भगवान सर्व पदार्थ को देखनेवाले हैं।** देखो, **'सव्व दर्स, दर्सयंति' 'सव्व दर्स, दर्सयंति'**

सब लोकालोक, अनन्त आत्मा, सब देखते हैं। सर्व दृष्टा केवलदर्शन हो गया। ऐसा देखनेवाले सिद्ध भगवान हैं, तुम भी सब देखनेवाले हो, ऐसी अन्तर्दृष्टि करो। किसी का करनेवाले नहीं, ऐसा कहते हैं। किसी का करनेवाला या किसी का लेनेवाला नहीं। सर्व को देखनेवाले हैं। केवली सर्व को देखते हैं, जानते हैं कि सर्व है। बस, इतना। इसी प्रकार तुम भी दृष्टा हो, सर्व को देखनेवाले हो। किसी का करना या धरना, ऐसा करना, वैसा करना, ऐसा तुम्हारी चीज़ में है ही नहीं। ऐसा लक्ष्य ले लेवे हमारे से, सिद्ध भगवान कहते हैं। इसका नाम मोक्षमार्ग है।

'**सव्व दर्सं, दर्सयंति**' अब सर्व कहाँ से आया? यदि एक ही आत्मा हो तो सर्व को देखते हैं, ऐसा कहाँ से आया? समझ में आया? सर्व देखते हैं। तीन काल, तीन लोक को भगवान देखते हैं। तो दूसरी अनन्त चीज़ें हैं, अनन्त गुण हैं, अनन्त पर्यायें हैं, उन्हें देखते हैं या अकेले अपने को देखते हैं? समझ में आया? देखते हैं अपने को, परन्तु वह पर्याय में अपना और पर का सर्वदर्शी भाव हो गया। पूर्णानन्द की प्राप्ति में सर्वदर्शीभाव (प्रगट हो गया)। ऐसा ही तेरा स्वभाव है, ऐसा भगवान का उपदेश है।

'**दर्सयंति सुद्ध ममल मल मुक्कं**' '**दर्सयंति**' है न इसमें? **तथापि अपने स्वरूप से ही शुद्ध रागादि मल रहित आनन्दमय ज्ञानस्वभावी मोक्षमार्ग को दिखला रहे हैं।** देखो, '**सुद्ध ममल मल मुक्कं**' '**अन्मोयं न्यान**' ज्ञान स्वभाव '**दर्सयंति**' पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान मेरा है, वह दर्शन में पहले लिया। पश्चात् आनन्द और ज्ञान लिये। पहले सर्वदर्शी, उसमें सर्व ज्ञान और पूर्ण आनन्द, ऐसे ज्ञानस्वभावरूपी **मोक्षमार्ग को दिखला रहे हैं।** लो! '**दर्सयंति**' ऐसे सिद्ध समान तेरे स्वभाव की दृष्टि और अनुभव करना, यही एक मोक्षमार्ग है, ऐसा भगवान दिखला रहे हैं। कहो, बराबर है? ओहोहो!

'**उवएसं च कम्म गलियं च**' **यही शुद्ध उपदेश को ग्रहण करते हैं...** लो! ऐसे शुद्ध उपदेश के सार को ग्रहण करते हैं, उनके कर्म नाश होते हैं। उनके कर्म पुण्य-पाप आदि कर्मबन्धन जो है, वह नाश पाता है। यह उपदेश ऐसा सार ग्रहण करे तो। मैं पूर्ण शुद्ध एक समय में अनन्त गुण रखनेवाला, सर्व को देखनेवाला-जाननेवाला, आनन्दवाला और वीर्यवाला। वीर्य तो पहले लिया था। वीर्य पहले आया था। पश्चात् ज्ञान, दर्शन

और आनन्द यहाँ विशेष लिया। अनन्त चतुष्टयधारी भगवान है, ऐसा तू लक्ष्य कर कि मैं भी अनन्त चतुष्टयधारी आत्मा हूँ। मैं देखनेवाला-जाननेवाला हूँ, कसी राग को करूँ और राग को छोडूँ, यह मेरे स्वभाव में नहीं है। समझ में आया ? सिद्ध राग को छोड़ते नहीं और राग को करते नहीं। ऐसा अपना स्वभाव शुद्ध चिदानन्द का आश्रय करके राग छूट जाता है, वह अलग बात है। राग छोड़ना नहीं पड़ता। ऐसा मेरा स्वभाव है। ऐसा मोक्षमार्ग सिद्ध भगवान दिखलाते हैं। ऐसा उपदेश ग्रहण करो। सिद्ध भगवान की भक्ति का यही फल मिलना चाहिए। देखो, भक्ति का अर्थ यह है। भक्ति अर्थात् किसी को दे सकते नहीं। उनका बहुमान हुआ कि सिद्ध भगवान ऐसे हैं आदर्शरूप से, तो उसका फल ऐसा है कि मैं परमानन्दमय शुद्ध उपयोग में रमण करे। परमानन्दमय अपनी शुद्ध .... रमणता करे, जिससे हमारे कर्म नाश पावें। ऐसा सिद्ध भगवान का उपदेश है। उसे तुम आदर करो तो तुम्हारा भी कल्याण होगा। ऐसे उपदेश का शुद्ध सार उसे कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र कृष्ण १२, रविवार, दिनांक - १५-०९-१९६३
गाथा-४९८ से ५००, ९४, २०९,३३,३४,२३६-२३७, प्रवचन-४

यह उपदेशशुद्धसार, तारणस्वामी रचित। उसमें उपदेश शुद्ध कैसा होना चाहिए और मोक्षमार्ग निश्चय यथार्थ कैसा होना चाहिए (उसका अधिकार चलता है)। ४९८। यह उपदेशशुद्धसार। वास्तविक सत्य उपदेश का सार और सत्य उपदेश किसे कहते हैं, मोक्षमार्ग में सच्चा उपदेश किस प्रकार से होता है, यह बात कहते हैं। ४९८।

इच्छंति मुक्ति पंथं, इच्छयारेन सुद्ध पंथ दर्सति।
षिपिऊन तिविहि कम्मं, षिपनिक सहकार कम्म विलयंति॥४९८॥

देखो, पहले क्या कहते हैं? भव्य जीव '**इच्छंति मुक्ति पंथं**' एक तो यह सिद्धान्त पहले लिया कि भव्य जीव जो है, उसकी भावना मुक्तिपंथ की होती है। समझ में आया? यह शुद्ध उपदेश में ऐसा आया कि कोई भी प्राणी मुक्तिपंथ की भावना करे तो वह यथार्थ है। इसके अतिरिक्त कोई पुण्य-पाप, कोई कुटुम्ब कबीला, पैसा, इज्जत, कीर्ति, मान की प्रार्थना (करता) है, वह भव्य जीव नहीं है। अथवा वह मुक्ति के पंथ का अभिलाषी नहीं है। भाई! भव्य जीव को ऐसा कड़क कहा है। अपने आता है न प्रवचनसार में। ऐसा इसमें भी कहीं कहा है। अभव्य शब्द है।

मुमुक्षु : .... में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, इसमें भी आता है कहीं। कहा है। तुमने लिया नहीं? इसमें आता है परन्तु इसमें कहीं कहा था। उसे खबर नहीं। अभव्य नाम लिया है कहीं। अब वह कोई सब लिखा था?

यहाँ कहते हैं कि भव्यजीव मोक्ष का अभिलाषी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त कोई अभिलाषा होती नहीं। उसकी श्रद्धा में विपरीतता इतनी होनी नहीं चाहिए। यह कहते हैं, देखो ९४ में।

कुगुरुं अधर्मं प्रोक्तं च, कुलिंगी अधर्म संचितं।
मानते अभव्य जीवस्य, संसारे दुष कारनं॥९४॥

भाषा कड़क ली है। कोई भी प्राणी **कुगुरु के कहे हुए अधर्म को कुधर्म में चलनेवाले हैं।** अपना शुद्ध परमार्थ पंथ मोक्ष का है, उसकी भावना नहीं करके कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानता है, और वह कुगुरु-कुशास्त्र को माननेवाला वेषी मिथ्यादृष्टि साधु को जो मानता है, अभव्य जीव श्रद्धान करता है। सेठी! प्रवचनसार में आता है कुन्दकुन्दाचार्य का कि ऐसा न माने (कि) आत्मा का आनन्द है, पर से रहित, ऐसा न माने तो अभव्य है। समझ में आया? देखो, **'अधर्म को कुधर्म में चलनेवाले मिथ्याभेषी साधु को...** जिसकी दृष्टि क्या है, एक समय में पूर्ण आनन्द एक द्रव्य आत्मा और अनन्त गुण का पिण्ड क्या है? परमेश्वरपद अपने अन्दर है। ऐसी जिसे श्रद्धा नहीं, उनसे विरुद्ध कहनेवाले को जो मानता है। **अभव्य जीव श्रद्धान करके पूछता है। यह मान्यता संसार में दुःखों का कारण... 'संसारे दुष कारनं'** शोभालालजी! परीक्षा करनी पड़ेगी, ऐसा कहते हैं। वरना सख्त कहते हैं कि अभव्य है। फिर इसे जरा बचाव करना पड़ा कि भाई! अभव्य ऐसा नहीं। परन्तु वह अभव्य का अर्थ कि नालायक है। समझ में आया? नालायक।

आत्मा एक समय में शुद्ध पूर्णानन्द प्रभु, उसकी पवित्रता की प्रार्थना, भावना, श्रद्धा-ज्ञान नहीं और कुगुरु-कुदेव-कुशास्त्र की श्रद्धा करता है और यह कहता है कि राग में, पुण्य में धर्म है, क्रियाकाण्ड में धर्म है, ऐसा बतलानेवाले को तू मानता है तो तू अभव्य है। देरियाजी! सख्त कहा है। समझ में आया? बराबर कहा है। नालायक है? मोक्ष की अभिलाषा नहीं करता। पिता पुत्र को नहीं कहते? नालायक है? तुझे व्यापार की खबर नहीं—ऐसा कहते हैं। करुणा से कहते हैं, हों! अरे आत्मा! मोक्ष का पंथ दिखलानेवाले ऐसे देव-गुरु-शास्त्र को तू नहीं मानता और तेरी भावना में भी मोक्षपंथ की भावना नहीं और बंधपंथ की भावना है और बन्ध बतलानेवाले, बन्ध बतलानेवाला, बन्ध बढ़ानेवाले मार्ग में तेरी रुचि है तो तू अभव्य है। समझ में आया? यह तो कहते हैं न उसमें। यह कहते हैं, हीरालाल है न!

मुमुक्षु : हमको तो बताया है कि ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भाई यह हीरालाल है न! प्रोफेसर हीरालाल। अभव्य शब्द

कुन्दकुन्दाचार्य में समयसार में, प्रवचनसार में आता है कि अरे... अभव्य! अपना शुद्ध स्वरूप पूर्णानन्द एक समय में सर्वज्ञ भगवान ने देखा, ऐसा तू नहीं मानता तो अभव्य है। तो हीरालाल कहते थे कि ऐसी भाषा नहीं करनी चाहिए। यहाँ आये थे, दो दिन रहे थे। तुम्हारे भी लिखा है, लेख लिखाया है, सबके पास थोड़ा-थोड़ा लिखाया है। समझ में आा? उसे न माने तो अभव्य। अरे! अभव्य है, सुन तो सही। अभव्य कहा है कुन्दकुन्दाचार्य ने। उसका दृष्टान्त दिया, देखो, यहाँ तारणस्वामी भी यह कहते हैं। समझ में आया? अभव्य हो? स्वयं परमानन्द... भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ छह द्रव्य, नौ तत्त्व पदार्थ, सात तत्त्व पंचास्तिकाय, ऐसी मान्यतासहित अपने शुद्धस्वभाव की मान्यता तुझे नहीं है, और दूसरी मान्यता करता है और दूसरी मान्यता बतलानेवाले को तू देव, गुरु और शास्त्र मानता है। देरियाजी! अभव्य कहते हैं यहाँ। तारणस्वामी कहते हैं कि अभव्य है।

देखो, **यहाँ अभव्य जीव से प्रयोजन जीव की तरफ है जो मूढ़ बुद्धि है। संसार रोचक है, विषय का प्रेमी है, ऐसा विधर्म को चाहते हैं जिससे अपना लौकिक प्रयोजन सिद्ध हो सके।** यह चलता है या नहीं? जहाँ-तहाँ मानता है। यह महावीरजी और क्या? पद्मपुरी, पुत्र, पुत्री के लिये मान्यता भगवान के पास मानता है। बतलानेवाले ऐसे। मिलेंगे। धूल में भी मिलेगा नहीं। सुन न! भगवान के पास तो वीतरागभाव है। उस वीतरागभाव से तुझे कहाँ रागादि मिलेंगे? ऐसी मान्यता करनेवाला... मोतीरामजी!

मुमुक्षु : कितनी....

पूज्य गुरुदेवश्री : जितनी भूल है, उतनी समझकर भूल निकालनी पड़ेगी। जितने प्रकार की भूल है, उतने प्रकार की समझण करके निकालनी पड़ेगी, इतनी समझण करनी पड़ेगी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कितनी एक घण्टे में? यह तो कोई ऐसी बात नहीं। संसार में तो एक दुकान में पाँच-पाँच हजार वस्तुएँ होती हैं, सबको याद नहीं रखते? दवाखाना याद रहता है या नहीं? हमारी दुकान में पाँच-पाँच हजार वस्तुएँ रहती थीं। उसमें सब भाव याद रहे। इस भाव में आयी थी, यह भाव अभी चलता है, इतनी चीज़

रह गयी, इतनी बाकी है, नया इतना आया है। सबमें एक-एक में तीन पट्टी बात याद रहती थी। नहीं रहती थी? उसमें क्या? जिसमें रुचि है, वह याद रहती है। जिसमें रुचि नहीं, वह याद नहीं रहता। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि अभव्य है। कुलिंगी, असत्य धर्म की (प्ररूपणा करनेवाला) ऐसे अधर्म के दाता कुलिंगी गुरु की श्रद्धा करता है। **बड़ी भक्ति से उसकी आराधना करता है। जिसके पाप बाँधकर संसार में पाप का फल दुःख भोगता है। ऐसा करोड़ों देवता-देवियों का स्थापन कुलिंगी गुरु और नाना नामों से कर रखा है।** कहते हैं न, क्षेत्रपाल और फलाना पाल और ढोर पाल। ऐई! यह सब तुम्हारे यहाँ बहुत चलता है। पत्थर रख दिया सामने सिन्दूर चोपड़कर। भगवान एक ओर बैठे। स्थापना निक्षेप एक ओर रहे। पहले चावल इसे लगावे। मूढ़ जीव। वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा कौन है और उनकी भावना क्या है, उसकी खबर बिना उसे मानता है। समझ में आया?

अनेक प्रकार के लौकिक फलों को पालने का लोभ दिया जाता है। मूर्ख प्राणी लाभ की आशा से हमारे लौकिक स्वार्थ सिद्ध होंगे। इस स्थापनाओं की बड़ी भक्ति करते हैं। मूढ़ है। वहाँ महावीरजी कैसे? पद्म—पद्मपुरी। सिर फोड़ता है वहाँ। रोगी हो तो रोग मिट जाये। धूल भी मिटता नहीं। तेरी असाता का उदय मिटे तो मिटे। लाख हो तो भी मिटे नहीं। कोई देवता भी दे नहीं सकता। वहाँ कहाँ... वह तो भगवान की प्रतिमा है। प्रतिमा दे सकती है वहाँ? ऐसा माननेवाला, भगवान के विरुद्ध मान्यता जिसकी है, ऐसी मान्यतावाला मानता है तो अभव्य जीव कहने में आता है। कहो, मन्त्रीजी! अभव्य कहते हैं यहाँ। लो, यह कठिन है। कठिन क्या है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभव्य का ही लक्षण है। नालायक का लक्षण है, ऐसा कहते हैं। देखो, समझ में आया? फिर कहते हैं, देखो!

'इच्छंति मुक्ति पंथं' एक महासिद्धान्त पहले लिया। भव्य जीव तो मोक्ष के मार्ग की ही इच्छा करते हैं। निश्चयमोक्षमार्ग। व्यवहार राग है। समझ में आया? शुद्ध भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने छह द्रव्य, नौ तत्त्व, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय है

अनादि-अनन्त चीज़ें, उनमें से अपना शुद्ध आत्मा पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड है, इसका आश्रय करना, उसकी भावना करना, ऐसा मुक्ति पंथ (दर्शाया है)। इसलिए उसे (जो मानता है उसे) भव्य कहा जाता है। '**इच्छयारेन सुद्ध पंथ दर्सेति**' क्या कहते हैं? भगवान **इच्छानुकूल...** इच्छानुकूल का अर्थ? सिद्ध भगवान को पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई तो उनकी इच्छा है तो दृष्ट बताते हैं कि देखो भाई! मैंने ऐसी पर्याय प्राप्त की, तू भी ऐसी प्राप्त कर। तुम्हारी इच्छा अनुकूल मुक्ति का पंथ देखना हो तो हमने परमानन्द की प्राप्ति की, तुम भी उस परमानन्द को प्राप्त करो। ऐसा भगवान दुनिया को इच्छा प्रमाण उपदेश देते हैं अर्थात् आदर्श होते हैं। आदर्श होते हैं सिद्ध भगवान। समझ में आया?

अपने ममल स्वभाव देखो... 'सुद्ध पंथ दर्सेति' है न? **शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग को दिखलाते हैं।** शुद्ध उपयोग। अपने शुद्धस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान में अन्तर लीनता करना, पुण्य-पाप का अशुद्ध उपयोग छोड़ना और अन्तर शुद्ध उपयोग में रमणता करना, वही एक सर्वज्ञ परमात्मा ने शुद्ध उपदेश मोक्ष का कहा है। दूसरे मोक्षमार्ग का दूसरा उपदेश है नहीं। दूसरे कहते हैं, उनसे विरुद्ध है, वह मोक्षमार्ग में नहीं। समझ में आया? और '**षिपिऊन तिविहि कम्मं' जिससे तीनों प्रकार के द्रव्य, भाव, नोकर्म...** नोकर्म शरीरादि, द्रव्यकर्म आठ कर्म जड़, भावकर्म पुण्य-पाप के विकल्प। पुण्य और पाप का विकल्प जो उठता है, वह भावकर्म है। आठों जड़कर्म, वे द्रव्यकर्म हैं। शरीर, वाणी, वह नोकर्म है। तीनों का **शुद्धोपयोग के द्वारा क्षय हो जाता है।** दूसरे के द्वारा नाश नहीं होता। शुद्ध उपयोग ही एक मोक्षमार्ग है। मुनि शुद्धोपयोग अंगीकार करते हैं। अट्ठाईस मूलगुण की बात, वह तो व्यवहार की बात है। आते हैं, व्यवहार से कहने में आते हैं कि यह अट्ठाईस मूलगुण मुनियों ने ग्रहण किये। वास्तव में तो शुद्ध उपयोग ही ग्रहण करते हैं। अट्ठाईस मूलगुण ग्रहण किये, यह तो व्यवहारनय का कथन है। उसे ही लोगों ने सर्वस्व मान लिया। तो ऐसा मार्ग है नहीं। क्षय हो जाता है।

'**षिपनिक सहकार कम्म विलयंति**' '**षिपनिक**' का अर्थ किया है कि क्षायिक समकित और क्षायिक चारित्र। यह '**षिपनिक**' का अर्थ किया, भाई! क्षायिक समकित। अपना शुद्धस्वरूप, उसकी ऐसी गाढ़ प्रतीति होना कि जो प्रतीति फिर बदले नहीं,

प्रतीति गिरे नहीं। ऐसा क्षायिक समकित और स्वरूप में स्थिरता यथाख्यातचारित्र, उससे ही **सर्व कर्म प्रभाव से सर्व कर्म गल जाते हैं।** इसके अतिरिक्त दूसरी कोई क्रियाकाण्ड और अपवास-बपवास, ऐसा करने से कर्म नाश पावे, ऐसा भगवान के उपदेश में है नहीं। कहो, मांगीलालजी! कितने अपवास करने से कर्म निर्जरित हों? यह उपवास। उप-वास। उप अर्थात् स्वरूप परमानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण का एक समय में पिण्ड, उसके समीप वास अर्थात् बसना, उसका नाम उपवास कहा जाता है। बाकी इस समय के भान बिना अपवास कहने में आते हैं। अप अर्थात् माठो वास, बुरा वास। राग की कोई मन्दता हुई और मान ले कि हमको निर्जरा हो गयी अपवास करने से, ऊनोदरी करने से, बुरा वास है, संसार के वास में जानेवाला है। कहो, समझ में आया? जो मोक्ष के मार्ग में चलना चाहते हों, उनका कर्तव्य है कि **शुद्धोपयोग पर चले, इससे कर्म क्षय होंगे।** बारम्बार भावना का अर्थ है। उसकी यह बात बहुत बार ली है।

४९९ (गाथा)।

चेतन्ति सुद्ध सुद्धं, सुद्धं ससहाव चेत उवएसं।
रुचितं ममल सहावं, रुचियन्तो न्यान निम्मलं ममलं॥४९९॥

क्या कहते हैं? '**चेतन्ति सुद्ध सुद्धं,**' परमात्मा शुद्ध चैतन्य शुद्ध आत्मा का जो अनुभव करता है और वही मोक्षमार्ग में कहा है। समझ में आया? अपना शुद्ध परमानन्द प्रभु का अनुभव करो, वही मोक्षमार्ग है। हम वही करके परमात्मपद पाये हैं। ऐसा सिद्ध भगवान का उपदेश है। ऐसा आदर्श उस प्रकार का बतलाते हैं। '**सुद्ध सुद्धं चेतन्ति**' सिद्ध भगवान शुद्ध चित अर्थात् आत्मा का वे '**चेतन्ति**' अनुभव करते हैं। समझ में आया? यह मोक्षमार्ग है। बल्लभदासभाई! देखो! व्यवहार क्रिया, दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, वह मोक्षमार्ग नहीं।

मुमुक्षु : मदद तो करते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मदद नहीं करते। निमित्त कहने में आते हैं। निमित्त कहा जाता है ज्ञान करने के लिये। समझ में आया? देखो!

देखो! '**चेतन्ति सुद्ध सुद्धं**' अपना भगवान आत्मा शुद्ध निर्मलानन्द शक्ति का

पिण्ड पड़ा है, गुप्त स्वरूप पड़ा है, उसमें एकाकार होकर शुद्ध अनुभव करना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। '**सुद्धं ससहाव चेत उवएसं**' उनका वही उपदेश है। भगवान त्रिलोकनाथ सिद्ध परमात्मा का यही उपदेश है कि शुद्ध आत्मिक स्वभाव का अनुभव करो। समझ में आया? और '**ममल सहावं रुचितं**' अब यहाँ आया। **उसी आत्मा के स्वभाव की रुचि करो।** पुण्य-पाप, निमित्त, संयोग की रुचि छोड़ दो। और अपना शुद्ध ज्ञान आनन्दकन्द, उसकी दृष्टि और रुचि करो। देखो! रुचि सम्यग्दर्शन का लक्षण बताया है। ४९९ है न, भाई! रुचि-रुचि। यह कल आया था न! वृक्ष... कहते हैं न? मूल बिना वृक्ष। श्रावकाचार, २१२ पृष्ठ पर है। कल रात्रि में नहीं कहा था? पहले निर्मल रुचि करो। अपना शुद्ध पूर्णानन्द की दृष्टि और रुचि पहले करो। इसके बिना तेरे कल्याण का पंथ, शुरुआत कभी तीन काल में होती नहीं। देखो! २०८ गाथा है श्रावकाचार। अब यहाँ तो पूरा हो जाये, फिर आयेगा तो क्या करेंगे?

जस्य संमित्त हीनस्य, उग्रं तव व्रत संजुतं।
संजम क्रिया अकार्जं च, मूल बिना वृक्षं जथा॥२०८॥

समझ में आया? मूल बिना वृक्ष नहीं हो सकता। 'मूलो नास्ति कुतो शाखा' आता है या नहीं? शोभालालजी! मूल नहीं, शाखा आयी, फल-फूल आवे। ठीक भाई! मूल नहीं और आये कहाँ से? इसी प्रकार जिसे आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द निर्विकल्पानन्द प्रभु है, ऐसी रुचि, दृष्टि सम्यक् हुई नहीं और व्रत, तप और क्रियाकाण्ड करता है, वह सब रण में रुदन मचाने जैसा है। रण में पोक समझते हो? अरण्य रुदन, जंगल में रुदन। वह उसका रुदन कोई सुने नहीं और रुदन उसका मिटे नहीं।

तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शनरहित है, ऐसी रुचि है। चला न वहाँ ४९९? शुद्ध चैतन्य पुण्य-पाप के परिणामरहित कर्मसम्बन्धरहित मैं पूर्णानन्द शुद्ध हूँ। अकेला मेरा स्वभाव पर से भिन्न है। ऐसे अनन्त आत्मायें हैं, अनन्तगुणे परमाणु हैं, यह सब है, परन्तु मैं पर से भिन्न अकेला पूर्ण शुद्ध आत्मा हूँ। ऐसी अन्तर्मुख निर्विकल्प दृष्टि करना, वही सम्यग्दर्शन का लक्षण है। और वह नहीं तो सम्यग्दर्शनरहित उसका उग्र तप, **घोर तप तपता है...** देखो, शब्द पड़ा है। उग्र तप। बारह-बारह महीने के अपवास करता है। मूढ़

है ? मर जाये बारह-बारह महीने के अपवास करके, परन्तु सम्यग्दर्शन बिना कभी धर्म नहीं होता। समझ में आया ?

मुमुक्षु : जैन में जन्मे....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन किसे कहना ? वाडा में जन्मे, यह सब जन्मे, उन्हें भान भी कब था ? ऐई ! सेठ ! जैन में जन्मे ही नहीं। जैन उसे कहते हैं, लो और यह आया। पृष्ठ २३। श्रावक अव्रत जैन... है इसमें ? इसमें है न ? ४२ पृष्ठ पर है। देखो, भाई ! जैन का शब्द। यहाँ तो जो कुछ बोले, वह थोड़ा-थोड़ा आया है। ४२ ? देखो,

सप्त प्रकृति विछिदो जत्र, सुद्ध दिस्टि च दिस्टिते।
श्रावकं अविरतं जेन, संसार दुष परान्मुषं॥३३॥

३३ गाथा है। श्रावकाचार। यह जैन उसे कहते हैं। वाडा में जन्मे, इसलिए जैन नहीं। समझ में आया ? देखो, क्या कहते हैं ? '**सप्त प्रकृति विछिदो**' जिसे आत्मा शुद्ध चिदानन्द की अन्तर्दृष्टि हुई और जिसने सप्त प्रकृति अनन्तानुबन्धी की चार और मिथ्यात्व की तीन—मिथ्यात्व, समकितमोहनीय, मिश्रमोहनीय, ऐसी चार प्रकृतियाँ हैं, यह तो निमित्त से करणानुयोग का कथन किया है। '**सप्त प्रकृति विछिदो जत्र, सुद्ध दिस्टि च दिस्टिते।**' समझ में आया ? सर्वथा क्षय—नाश होने से शुद्ध आत्मदृष्टि क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक से शुरु किया है। **आत्मा में दिखलाई पड़ता है।** '**श्रावकं अविरतं जेन**' वह अविरति श्रावक होता है। वही जैनी है। देरियाजी ! देखो, '**श्रावकं अविरतं जेन**' ३३वीं गाथा है। समझ में आया ? '**श्रावकं अविरतं जेन**' हों ! अभी अव्रती समकितदृष्टि। ... पाँचवाँ गुणस्थान तो आगे रहा और मुनि तो कहीं आगे रह गये। यहाँ तो कहते हैं कि सबसे पहले ऐसा सम्यग्दर्शन रुचि, अपना शुद्ध भगवान विकार से रहित, पुण्य-पाप की रुचि से रहित, संयोग की रुचि से रहित, है सब वस्तुएँ परन्तु अपने स्वभाव की रुचि—दृष्टि बिना इस संसार में अव्रती जैन भी कहने में नहीं आता। समझ में आया ? व्रत-ब्रत पाले मिथ्यादृष्टि तो अव्रत जैन भी नहीं है। क्या है ? अभी दृष्टि की खबर नहीं।

'**संसार दुष परान्मुषं**' **यह अविरति श्रावक होता है, वही जैनी है। वही जैनी है।** जैन का पक्ष होगा तारणस्वामी को ? ... होगा या नहीं ? धूल में भी नहीं, सुन तो सही।

पक्ष नहीं, यह तो जैन की वस्तु ऐसी है। समझ में आया? वस्तु ऐसी है। कुछ जैन उसे कहना, दूसरे को मिथ्यादृष्टि कहना। यह तो भाई! अपनी प्रशंसा और पर की निन्दा। ऐसा है ही नहीं। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। अनन्त आत्मा में मेरा आत्मा अत्यन्त शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा सर्वज्ञस्वभाव जैसा भगवान ने कहा, वैसा ही मेरा सर्वज्ञस्वभाव है। मैं जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। रागादि आते हैं, वह भी मेरा वास्तविक कर्तव्य नहीं है। तो निमित्त को मिलाना, प्राप्त करना, वह मेरा कर्तव्य नहीं है। ऐसी अन्तर शुद्ध दृष्टि बिना अव्रत जैन कहने में आता नहीं। और अव्रत जैन, भले अव्रती जैन हो। देखो, '**संसार दुष परान्मुषं**' समझ में आया? **वही संसार के दुःखों से विपरीत सुख का भोगनेवाला होगा।** भोगनेवाला है। अव्रती सम्यग्दृष्टि। अन्तर में राग और पुण्य से रहित अपनी दृष्टि जितनी निर्मल की, उतना तो सुख का भोग अन्दर है। वह दुःख से भी पराङ्मुख है। थोड़ा कषाय बाकी जितना रहा, उतनी आकुलता है, परन्तु उससे पराङ्मुख है। उसे आदरणीय मानता नहीं। समझ में आया? उसे जैन अव्रत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। देरियाजी! यह तो तुम्हारे लेख में से तुमको बताते हैं। परन्तु खबर नहीं। लो, सबको मिला दो। इसमें ऐसा है, इसमें वैसा है, इसमें ऐसा है।

जैन परमेश्वर ने जो कहा, त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय (कहे हैं)। एक-एक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण। तीन काल, तीन लोक में अन्यत्र ऐसी वस्तु है नहीं। समझ में आया? एक जीव अनन्त, उससे अनन्तगुणे परमाणु, उससे अनन्तगुणा त्रिकाल समय है। कहो, समझ में आया? यह भगवान के अतिरिक्त कहीं नहीं होता तीन काल में। जितने जीव की संख्या है, उससे अनन्तगुणे तो पुद्गल हैं, यह परमाणु, और उनसे अनन्तगुणे त्रिकाल के समय। क्या कहते हैं, सुना ही नहीं। शोभालालजी! सुना नहीं, यह बराबर है या नहीं? बराबर है। सुना नहीं। भाई ऐसा कहते थे। समझ में आया? यह पुद्गल से अनन्तगुणा तीन काल के समय। तीन काल जितने हैं न। तीन काल। एक सेकेण्ड में असंख्य समय जाते हैं। ऐसे तीन काल। आदि-अन्तरहित तीन काल। यह पुद्गल की संख्या से तीन काल की पर्याय अनन्तगुणी है। वह समय काल का। समझ में आया? और एक-एक आत्मद्रव्य में एक गुण की जो एक समय की पर्याय है, वह एक गुण की (पर्याय) त्रिकाल के जितने समय हैं, उतनी

पर्याय एक गुण की है। यह बात कहाँ है, लाओ! समझ में आया? ऐसा सम्यग्दर्शन, जैनदर्शन कहता है, ऐसी चीज़ मानकर अपने शुद्ध की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

और तीन काल के जितने समय हैं, उनसे आकाश के प्रदेश अनन्तगुणे हैं। क्या कहते हैं? भगवान जाने क्या होगा? आकाश है या नहीं पदार्थ? छह द्रव्य में आकाश आया या नहीं आकाश? यह गाथा बतायी थी, छह द्रव्य और नौ तत्त्व की। आकाश नाम का एक पदार्थ लोक-अलोक व्यापक अरूपी है। उसमें अनन्त प्रदेश हैं। एक परमाणु पॉईन्ट रखे, उतनी जगह को प्रदेश कहते हैं। अनन्त। कितने? कि तीन काल के समय से अनन्तगुणे। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात तीन काल में, तीन लोक में अन्यत्र कहीं है नहीं।

ऐसा एक आत्मा, उसके अनन्त गुण। उसके एक गुण की एक पर्याय एक समय में। तीन काल की पर्याय, तीन काल के समय जितनी एक गुण की पर्याय, ऐसे अनन्त गुण की त्रिकाल पर्याय और उस त्रिकाल पर्याय का एक समुदायरूप गुण, ऐसे अनन्त गुण के समुदायरूप एक द्रव्य। देरियाजी! मस्तिष्क को फैलाना पड़ता है। समझ में आया? ऐसा जिन भगवान का उपदेश है, ऐसा यदि अन्तर में पहले माना, पश्चात् अन्तर में शुद्ध चैतन्यमूर्ति की दृष्टि करता है। जिसे छह द्रव्य, नौ तत्त्व की श्रद्धा की खबर नहीं, उसे यह खबर होती नहीं। कहो, समझ में आया?

संमिक दिस्टिनो जीवा, सुद्ध तत्त्व प्रकासकं।
परिनामं सुद्ध संमित्तं, मिथ्या दिस्टि परान्मुषं॥३४॥

लो, यह ३४ गाथा आयी। **सम्यक् दृष्टिवाला जीव शुद्ध तत्त्व का प्रकाश करता है,...** देखो, चौथे गुणस्थान में शुद्ध भगवान आत्मा का प्रकाश करनेवाला होता है। सम्यग्दर्शन शुद्ध परिणाम, वह आत्मा का शुद्ध स्वभाव है। क्या कहा? देखो, वर्तमान में बड़ा अन्तर है। आत्मा शुद्ध स्वभाव, वह यह शुद्ध परिणाम है। क्या? सम्यग्दर्शन गुण नहीं, पर्याय है। देखो, लिखा है। '**परिनामं सुद्ध**' समझ में आया? अपने शुद्धस्वरूप की श्रद्धा सम्यक् निश्चय सम्यग्दर्शन, वह एक पर्याय है, गुण नहीं। गुण त्रिकाल रहते हैं।

अभी गुण की खबर नहीं, पर्याय की खबर नहीं। शोभालालजी! भाई! सुनना पड़ेगा थोड़ा-थोड़ा। तुमको कौन कहे वहाँ सेठियाओं को सबको वहाँ? पैसा फाट... फाट हो, गाँव दे पचास हजार, लाख। सब महिमा करे। यहाँ तो सबको... सब मक्खन चोपड़े। मक्खन समझते हो? मस्का। यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि सुन! हमारी श्रद्धा तुझे है? तारण समाज कहना और कहते हैं उसे मानना नहीं। पिताजी सच्चे हैं, उनकी आज्ञा मानना नहीं। ऐई! महेन्द्रभाई!

'संमिक दिस्टिनो जीवा, सुद्ध तत्त्व प्रकासकं। परिनामं सुद्ध संमित्तं' यह विवाद उठाते हैं। हम तो बहुत समय से कहते हैं, भाई! सम्यग्दर्शन तो पर्याय है। केवलज्ञान भी एक समय की गुण की पर्याय है। एक थे। नाम नहीं लेते हैं। एक क्षुल्लक। अरे! तुमने सम्यग्दर्शन को पर्याय कैसे कहा? वह तो गुण है। सिद्ध में भी आठ गुण हैं। वह गुण है। अरे! सुन तो सही! आठ गुण तो कहा है, वह तो पर्याय है। गुण कहीं प्रगट होते हैं? गुण तो त्रिकाल है। (पर्याय) प्रगट होती है। गुप्त है। गुण तो गुप्त शक्तिरूप है। उसमें से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र प्रगट होते हैं। तीनों आत्मा की पर्याय है, निर्मल अवस्था है, निर्दोष अरागी, वीतरागी पर्याय परिणाम है। परिणाम कहो, पर्याय कहो, स्वभावपर्याय कहो, समझ में आया? अवस्था कहो। यहाँ तारणस्वामी ने उसे शुद्ध परिणाम कहा है। समझ में आया? अभी यह भी खबर न हो, महेन्द्रभाई! राम जाने सम्यग्दर्शन क्या होगा? भगवान तो जानते हैं।

यहाँ तो तारणस्वामी कहते हैं कि भाई! आत्मा के शुद्ध परिणाम हैं। वह यह शुद्ध। दो बोल लिये। शुद्धस्वभाव या शुद्ध परिणाम। पाठ में तो शुद्ध परिणाम ही लिया है। पाठ में शुद्ध परिणाम (लिया है)। **'परिनामं सुद्ध संमित्तं'** ३४ गाथा। प्रत्येक गाथा में तो बताते हैं। वाँच लेना। पुस्तक साथ में है या नहीं? **'मिथ्या दिस्टि परान्मुषं'** और वह मिथ्यादर्शन विपरीत, उससे पराङ्मुख है। उसकी दृष्टि विपरीत, वह अशुद्ध पर्याय है। अशुद्ध पर्याय मिथ्यादर्शन, वह भी अशुद्ध पर्याय; सम्यग्दर्शन, वह शुद्ध पर्याय है। मिथ्यादर्शन वह अशुद्ध परिणाम है और सम्यग्दर्शन, वह शुद्ध परिणाम है। दोनों परिणाम है, पर्याय है। यह दो कोई गुण नहीं। समझ में आया? यह तो इतना लिया।

पश्चात् क्या कहा? वह ... आया था न। २०८ कहा न? देखो, क्या कहते हैं? २०८ में, हों! भाई! अपने श्रावकाचार में। मूल बिना व्रत, **जो सम्यग्दर्शन रहित है उसका कठिन तप करना और व्रत पालना और संयम धारना... 'संजम'** शब्द पड़ा है, देखो। **'उग्र तव व्रत संजम'** यह सर्व क्रिया, यह सर्व व्यवहार आचरण, सर्व व्यवहार आचरण पुण्य, विकल्प शुभ क्रिया है। **'संजम क्रिया अकार्जं'** व्यर्थ है। तुझे किसी काम की नहीं। ठीक परन्तु देरियाजी तो आये इस बार यहाँ। वहाँ भोपाल में आये थे?

मुमुक्षु : हाँ, आये थे। ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ, यह भी आये थे? यह आये थे। कुछ अधिक लोग नहीं। समझ में आया?

'अकार्जं' क्या कहते हैं? भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा आत्मा शुद्ध एक स्वभावी अनन्त आनन्द का कंद ऐसी अन्दर प्रतीति का भान नहीं तो तेरी सब क्रिया व्यर्थ-अकार्य है। चार गति में भटकानेवाली है। स्वर्ग में जाये तो भी वह का वह ढोर होगा, फिर ढोर होगा। स्वर्ग में से फिर ढोर होगा। ढोर समझे? पशु। **'अकार्जं' 'मूल बिना वृक्ष जथा'** देखो, पाठ लिया है। **मूल के बिना वृक्ष नहीं हो सकता।** यह २०८ गाथा। नाम लेकर तो कहते हैं। देखो, श्रावकाचार। **'मूल बिना वृक्ष जथा'** इसका लम्बा अर्थ बाद में भाई ने किया है। मूल पाठ इतना अपने। तारणस्वामी का इतना अर्थ है।

पश्चात् २०९।

संमित्तं जस्य मूलस्य, साहा व्रत डाल नंतनंताई।
अवरेवि गुणा होंति, संमित्तं जस्य हिदयस्य॥२०९॥

अपने यह कहा न, **'दंसण मूलो धम्मो'** बड़े शब्द हैं न! **'दंसण मूलो धम्मो'** धर्म का मूल दर्शन है। यह कुन्दकुन्दाचार्य का दर्शनपाहुड़ है न? दर्शनपाहुड़ लिखा है, देखो! दर्शनपाहुड़ नीचे लिखा है। दर्शनप्राभृत। नीचे लिखा है छोटे अक्षर में। ... उसमें **'दंसण मूलो धम्मो'** सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। तो जैसे सम्यग्दर्शन मूल नहीं तो उसकी शाखा, प्रतिशाखा होती नहीं। धर्म चारित्र है। स्वरूप में लीनता, आनन्द और उग्र शान्ति प्रगट करना, वह चारित्र, वह धर्म है। चारित्तं खलु धम्मो। चारित्र, वह धर्म है।

परन्तु उस धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन मूल बिना कभी उसकी शाखा, प्रतिशाखा चारित्र होता नहीं।

संमित्तं जस्य मूलस्य, साहा व्रत डाल नंतनंताई।
अवरेवि गुणा होंति, संमित्तं जस्य हिदयस्य॥२०९॥

जिसे सम्यग्दर्शनरूपी मूल अर्थात् जड़ है... मूल पाठ में '**मूलस्य**' फिर नीचे शीतलप्रसादजी ने अर्थ किया है। जड़ किया जड़। मकान की नींव होती है न? क्या कहते हैं? नींव। जिसे सम्यग्दर्शनरूपी मूल है, उसे शाखायें '**व्रत डाल नंतनंताई।**' व्रत अनन्तानन्त हो सकते हैं। व्रत अर्थात् कुछ विकल्प नहीं, हों! स्वरूप की स्थिरता। व्रत आते हैं, बीच में अट्ठाईस मूलगुण, परन्तु वह वास्तव में व्रत नहीं। सम्यग्दर्शन की शाखा प्रस्फुटित होती है। प्रस्फुटित होते-होते स्वरूप में स्थिरता होती है। इतनी स्थिरता होती है कि अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... स्थिरता बढ़ते-बढ़ते यथाख्यातचारित्र की स्थिरता हो जाती है और उसके फलरूप से केवलज्ञान हो जाता है। और जिसके मूल में सम्यग्दर्शन है, उसे यथाख्यातचारित्र आदि की सिद्धि होकर केवलज्ञान का फल वृक्ष का प्राप्त हो जाता है। जिसे यह मूल नहीं, उसे कुछ भी लाभ नहीं। समझ में आया? '**नंतनंताई**' देखो, वृक्ष रूपी अनन्तानन्त शाखा। समझ में आया? निर्मल पर्याय अनेक प्रकार की अनन्त-अनन्त।

'**अवरेवि गुणा होंति**' जो अपने यहाँ रुचि चलती है न उपदेशसार में। जिसकी रुचि सम्यक् शुद्धात्मा की हुई, उसे '**अवरेवि गुणा**' बहुत गुण होते हैं। '**संमित्तं जस्य हिदयस्य**' '**संमित्तं जस्य हिदयस्य**' जिसके ज्ञान में, अन्तर में सम्यक्त्व है, उसे अनेक गुण की प्राप्ति हो जाती है और उस गुण बिना तेरे व्रत और नियम और फल, वह सब बिना एक के शून्य हैं। उसकी तो खबर नहीं। राजारामजी! सम्यग्दर्शन की खबर नहीं और ले लो प्रतिमा, ले लो व्रत और ले लो यह। धूल में है। माल नहीं, वाड की लो। मोल समझते हो? फसल। फसल नहीं, वाड बनाओ काँटे की बड़ी मजबूत। अन्दर पशु न आवे। माल नहीं और वाड़ किसकी? समझ में आया? यह तो तारणस्वामी कहते हैं '**अवरेवि गुणा होंति, संमित्तं जस्य हिदयस्य**' समझ में आया? उसमें भी बहुत बात ली है।

संमित्तं बिना जीवा, जानै अंगाई श्रुत बहुभेयं।
अनेयं व्रत चरनं, मिथ्या तप बाटिका जीवो॥२१०॥

'संमित्तं बिना जीवा, जानै अंगाई श्रुत बहुभेयं' ग्यारह अंग, नौ पूर्व तक पढ़े। लो! देखो, **'जानै अंगाई श्रुत बहुभेयं'** मूल दृष्टि सम्यक्त्व बिना ज्ञान कैसा तेरा? पठन ग्यारह अंग और नौ पूर्व? देखो, पाठ। **'श्रुत अंगाई बहुभेयं' ग्यारह अंग नौ पूर्व तक बहुत प्रकार शास्त्र को जाने...** अथवा **'अनेयं व्रत चरनं' अन्य जो कोई बहुत व्रतादि का आचरण करे, वह सब... 'मिथ्या तप बाटिका जीवो।'** मिथ्या तप का निवासरूपी जाल है। लो! यह मिथ्यातप का निवासरूपी गहन जाल में घुस गया है। मूढ़ जाल में प्रविष्ट हो गया है। उसे सम्यग्दर्शन बिना तेरा जाल है, अज्ञान का जाल बिछा हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

यह तत्त्वार्थश्रद्धान है न, भाई! यह लोग कहते हैं कि तत्त्वार्थश्रद्धान कहीं निकाला था न? वह २३७ पृष्ठ। यह न? देखो २३७। देखो, क्या कहते हैं? रत्नत्रय का स्वरूप बताते हैं। उसमें दर्शन, ज्ञानं चारित्रं साधन शुद्धात्मागुणं... .... देखो, शुद्धात्मा गुण प्रयोग किया है। .... सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र के साथ शुद्धात्मा के गुण। **शुद्धात्मा के गुणों के द्वारा अविनाशी तत्त्व का प्रकाश होता है, वही तत्त्व यथार्थ ज्ञानमय निश्चल है।** अब फिर कहते हैं। २३६।

दर्सनं तत्त्व सार्धं च, तिअर्थं सुद्ध दिस्टतं।
मय मूर्ति संपूर्न च, स्वात्म दर्सन चिंतनं॥२३६॥

यह तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार नहीं। बड़ी गड़बड़ अभी चलती है। इन्होंने अर्थ किये हैं जरा, हों! शीतलप्रसादजी ने। यह सात तत्त्व की श्रद्धा यहाँ नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि **'दर्सनं तत्त्व सार्धं च, तिअर्थं सुद्ध दिस्टतं।'** उमास्वामी में आता है न तत्त्वार्थश्रद्धानं, उसे अभी कितने ही पण्डित कहते हैं कि वह व्यवहार है... व्यवहार है। नहीं... नहीं... नहीं... निश्चय समकित की बात है तत्त्वार्थश्रद्धानं। मोक्षशास्त्र है या बन्धशास्त्र है? किसी दूसरी जगह, किसी जगह तत्त्वार्थश्रद्धान को व्यवहार गिनने में आया है, परन्तु यहाँ नहीं। यहाँ नहीं, देखो! यह तारणस्वामी भी यहाँ कहते हैं कि **'दर्सनं तत्त्व सार्धं**

च, तिअर्थं सुद्ध दिस्टतं। मय मूर्ति संपूर्नं च, स्वात्म दर्सन चिंतनं।' खबर नहीं खबर। शोभालालजी! फिर सिर पर बैठे। जय नारायण! अच्छा है, अच्छा है। तत्त्वार्थश्रद्धानं दर्शनं। जो उमास्वामी तत्त्वार्थसूत्र में पहला सूत्र कहते हैं, वही यहाँ प्रकाशित किया है, देखो! वहाँ **'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणी मोक्षमार्गः'** लिया है। तो पहले यहाँ २३५ में यह लिया है। **'दर्सनं न्यान चारित्रं, सार्धं सुद्धात्मा गुनं।'** पश्चात् दूसरा सूत्र लिया तत्त्वार्थश्रद्धान। उसमें। तो दूसरी गाथा में तत्त्वार्थश्रद्धान लिया है। यह तो क्रमसर आचार्यों ने कहा, उनकी भाषा में उन्होंने रचा है। समझ में आया?

पहला सूत्र आया २३५ में, दूसरा सूत्र आया २३६ में। हमने तो बहुत पढ़ा नहीं उनका। यह तो थोड़ा-थोड़ा सेठ कहते हैं न, इसलिए थोड़ा-थोड़ा पढ़ा है। सवेरे थोड़ा-थोड़ा देखा है। समझ में आया? मिलान करके बहुत नहीं देखा। **'दर्सनं तत्त्व सार्धं च' तत्त्व का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है, यह भवसागर से तीर्थ नाम जहाज है।** कहो, महेन्द्रभाई! तत्त्वार्थश्रद्धान, व्यवहारश्रद्धान, वह भवसागर से तिरने का जहाज है? व्यवहार समकित तो राग है। समझ में आया? जितना व्यवहार समकित हो भले, जब तक पूर्ण वीतराग न हो, (तब तक) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, नौ तत्त्व, छह द्रव्य की श्रद्धा होती है, परन्तु वह है विकल्प, वह राग है, वह आस्रव है, वह उदयभाव है। समझ में आया? तो आस्रव से भवसागर तिरता है, ऐसी बात तीन काल में नहीं है। सेठ! समझना पड़ेगा।

देखो, **'तिअर्थं सुद्ध दिस्टतं।' यह भवसागर से तिरने का तीर्थ जहाज है।** कौन? तत्त्वार्थश्रद्धान निश्चय सम्यग्दर्शन। व्यवहार सम्यग्दर्शन जहाज नहीं। वह तो आस्रव है, आता अवश्य है। पूर्ण न हो, तब तक देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का राग होता है, परन्तु वह मोक्षमार्ग है या संवर-निर्जरा का कारण है, ऐसा नहीं है। कड़क लगे दुनिया को या न लगे, परन्तु वस्तु तो ऐसी है। **'ज्ञान मूर्ति संपूर्नं च'** देखो, क्या कहते हैं? **यही शुद्ध दृष्टिमय है। यह शुद्ध दृष्टि...** ऐसा लिया, भाई! **'सुद्ध दिस्टतं'** व्यवहार समकित वह शुद्ध नहीं। समझ में आया? यदि तत्त्वार्थश्रद्धान को व्यवहार समकित कहो तो वह अशुद्ध है और यहाँ तो कहा कि **'सुद्ध दिस्टतं'**। उमास्वामी ने जो

कहा न, उसका ही अनुसरण करके इनकी भाषा में बनाया है। '**सुद्ध दिस्टतं' यही शुद्ध दृष्टिमय है।** अपने चिदानन्दस्वभाव के भानपूर्वक उसमें सातों तत्त्व की श्रद्धा निर्विकल्प, हों! राग नहीं। ऐसी श्रद्धा करना, **यही शुद्ध दृष्टिमय है। जहाँ ज्ञानमूर्ति, ज्ञानमूर्ति अपने सब गुणों से पूर्ण अपने में आत्मा का दर्शन है व चिन्तवन है।** देखो, यह तत्त्वार्थश्रद्धान में ही ज्ञानमूर्ति भगवान सम्पूर्ण अपने सर्व गुणों से पूर्ण ऐसा '**स्वात्म दर्सन चिंतनं**' यहाँ चिन्तन शब्द से विकल्प नहीं लेना परन्तु उस अपने स्वरूप का दर्शन, वही एकाग्रता है। उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय कहा जाता है। समझ में आया?

यह तो कितने वर्ष से विवाद था। सम्यग्दर्शन पर्याय है। वह तो गुण है। भाई! वह गुण नहीं, प्रभु! सुन तो सही, भाई! गुण तो निगोद में भी अनन्त हैं, सिद्ध में भी अनन्त हैं। गुण तो ध्रुवरूप रहते हैं। द्रव्य और गुण तो ध्रुवरूप रहते हैं और पर्याय प्रगट होती है। संसार भी आत्मा की एक विकारी पर्याय है। संसार स्त्री, पुत्र, परिवार में नहीं रहता। समझ में आया? संसार तम्बाकू में नहीं रहता। शोभालालजी! संसार—संसरणं इति संसारः। भगवान आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध ज्ञान में से संसरण—हटकर मिथ्यादृष्टि का भाव, राग-द्वेष का भाव हो, उसे भगवान संसार कहते हैं। तो संसार आत्मा की एक अशुद्ध पर्याय है और मोक्षमार्ग भी आत्मा की एक अपूर्ण शुद्ध पर्याय है। अपूर्ण शुद्ध पर्याय है इतना। और मोक्ष, वह आत्मा की पूर्ण शुद्ध पर्याय है। समझ में आया? देरियाजी! बात तो बहुत सादी चलती है। समझ में आये ऐसी है, ऐसी कहीं गूढ नहीं आती है।

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त वस्तु की पर्याय में जब तक श्रद्धा विपरीत, राग-द्वेष के परिणाम होते हैं, उसे भगवान संसार कहते हैं। स्त्री, पुत्र, परिवार सब तो छूट जाता है। शरीर, स्त्री और परिवार यदि संसार हो तो वह तो छूट जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि संसार छूट गया। मुक्ति होनी चाहिए। संसार उसकी दशा में है। संसारतत्त्व, आस्रव-बन्धतत्त्व को संसारतत्त्व कहा है। समझ में आया? जीवादि सात तत्त्व है न? उसमें आस्रव और बन्ध पर्याय, वही संसारतत्त्व है। जड़ नहीं, कर्म नहीं, वह संसार नहीं, वह तो परचीज़ है। आहाहा! रामस्वरूपजी! समझ में आया? यह राम का प्रसाद, इसका नाम है। 'निजपद रमे सो राम कहिये, निजपद रमे सो राम कहिये।' पूर्णानन्द प्रभु

अपनी श्रद्धा, ज्ञान में रमे, उसे राम कहते हैं, बाकी दूसरे को अराम कहते हैं। कहो, समझ में आया?

.... संसारपर्याय पर्याय है—अवस्था है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों पर्याय है। तीनों मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय है और पूर्ण शुद्ध केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त गुण की पर्याय पूर्ण सिद्ध को (प्रगट हुई), वह पूर्ण पर्याय है। पूर्ण शुद्ध है, परन्तु है तीनों पर्याय। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो बोले। यह तो गुण (कहे जाते हैं)। विकार को अवगुण कहा, तो विकार के नाश को गुण कहा, परन्तु है तो दोनों पर्याय। समझ में आया? द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान घट गया। लोक में क्या द्रव्य है और क्या गुण है और क्या पर्याय है, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ क्या कहते हैं, यह खबर बिना सब खिचड़ा-खिचड़ा (करे)। खिंचड़ा समझते हो? दाना और कंकड़। कहते हैं, देखो,...। '**स्वात्म दर्सन चिंतनं**' वह अपने दर्शन का चिन्तवन। चिन्तवन शब्द से एकाग्रता है, हों! अन्दर निर्मल पर्याय। चिन्तवन में जितना विकल्प उठता है, उतना राग है। अन्दर में एकाग्रता हुई है। समझ में आया? देखो, पश्चात् भी लेते हैं। देखो!

दर्सनं सप्त तत्वानं, दर्व काय पदार्थकं।
जीव द्रव्यं च सुद्धं च, सार्धं सुद्धं दरसनं॥२३७॥

यह रुचि का चलता है, हों! अपने यहाँ ४९९ चलती है न? '**रुचितं ममल सहावं,**' यह '**रुचितं ममल सहावं,**' कहो या तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्व कहो, दोनों एक ही बात है। समझ में आया? देखो, '**दर्सनं सप्त तत्वानं, दर्व काय पदार्थकं। जीव द्रव्यं च सुद्धं च, सार्धं सुद्धं दरसनं।**' क्या कहते हैं? सात तत्त्व, छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय। पाँच अस्तिकाय समझते हो? काल के अतिरिक्त पाँच अस्तिकाय है। काल अस्ति है, परन्तु काय नहीं। काल असंख्य अणु है, परन्तु भिन्न-भिन्न है। अस्ति है चौदह ब्रह्माण्ड लोक प्रमाण एक-एक आकाश (प्रदेश) में एक-एक अणु, अरूपी काल अणु है। देखो इन छह द्रव्यों में कालाणु आता है। पंचास्तिकाय में वह नहीं आता। क्योंकि अस्ति

है, काय नहीं। एक-एक है। तो कहते हैं, पाठ देखो। '**सप्त तत्वानं, दर्व काय पदार्थकं दर्सनं**' उसकी यथार्थ श्रद्धा करना, उसमें से फिर आत्मा का शुद्ध दर्शन करना, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? दूसरे में छह द्रव्य, पंचास्तिकाय कहाँ है? अभी तो छह द्रव्य की खबर नहीं। शोभालालजी! छह द्रव्य की खबर नहीं। नाम नहीं आते, लो! अनन्त जीव, अनन्त परमाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश और कालाणु असंख्य हैं असंख्य। उन्हें जाति से छह द्रव्य कहते हैं। संख्या से अनन्त। ऐसी प्रतीति पहले व्यवहार से यथार्थ होनी चाहिए। ज्ञान में ऐसी बात न आवे तो उसे शुद्ध सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया?

पंचास्तिकाय। यह काल एक अस्ति है, काय नहीं। असंख्य अणु हैं। रत्न का ढ़ेर होता है न? रत्न का ढ़ेर। तो एक रत्न दूसरे में मिलता नहीं। इसी प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में असंख्य कालाणु रत्न के ढ़ेर हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न रत्न हैं। एक नहीं होते। इसलिए पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थ का श्रद्धान करना। समझ में आया? इन्होंने फिर स्वयं कहा भाई यह तो। यह भेदवाला है न, इसलिए व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा, परन्तु वास्तव में तो उस सहित '**जीव द्रव्यं च सुद्धं च, सार्धं सुद्धं दरसनं।**' शुद्ध जीवद्रव्य का यथार्थ श्रद्धान करना, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। व्यवहार तो पहले श्रद्धा में आता है। परन्तु वह है तो निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। निश्चय होता है तो उसे व्यवहार कहा जाता है। बात में बहुत अन्तर है। भाई! यह व्यवहार श्रद्धा है न, तो वह निश्चय का कारण है, ऐसा नहीं है। व्यवहार से कहा जाता है, परन्तु वास्तव में है नहीं। अन्तर शुद्ध सम्यक् अन्तर रुचि प्रगट हो तो उसे व्यवहार कहा जाता है।

मुमुक्षु : यह तो निश्चय हुआ तो व्यवहार होगा ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब व्यवहार साथ में होता ही है, वीतरागता न हो तब तक। देखो, ४९९।

'**रुचितं ममल सहावं,**' कैसा है सम्यग्दृष्टि? जिसे निर्मल स्वभाव की रुचि हो गयी है। यहाँ तो रुचि करो, ऐसा कहते हैं न? रुचि करो। प्रभु निर्मल स्वभाव है। वह पुण्य-पापभाव मलिन है, वे अशुद्ध हैं। श्रद्धा में लाना चाहिए कि है, आदरणीय नहीं।

'**रुचितं ममल सहावं,**' और '**रुचियन्तो न्यान निम्मलं ममलं।**' और रुचि से ही वह '**रुचियन्तो**' ऐसा शुद्धस्वभाव, ऐसे आत्मा की रुचि से ही ज्ञान आवरणरहित '**निम्मलं**' है न? '**निम्मलं**' ज्ञान आवरणरहित और '**निम्मलं**' अथात् वीतरागता हो जाती है। मलरहित हो गया। वीतराग अर्थात् रागरहित। समझ में आया? देखो, शुद्धता की धुन में अकेली शुद्धता घोंटी है। बारम्बार श्लोक में देखने में आवे, धुन शुद्धता की थी न, तो उस धुन में शुद्धता साधारण शब्द में बारम्बार ले लिया है। कहो, समझ में आया? ४९९ हुई।

५०० (गाथा)।

उत्तं च सुद्ध सुद्धं, उत्तायन्तु ममल कम्म विलयं च।
परषे परम सुभावं, परषंतो सुद्ध कम्म विलयंति॥५००॥

'**उत्तं च सुद्ध सुद्धं,**' सिद्ध का स्वभाव शुद्ध वीतराग कहा गया है। यहाँ तो सिद्ध समान तेरा आत्मा है, ऐसी दृष्टि कर, ऐसा कहना है न! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो, चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो।' समझ में आया? पर्याय में मलिन है, नहीं है, ऐसा नहीं, परन्तु स्वरूप सिद्ध समान है। ऐसी अन्तर की दृष्टि सिद्ध का स्वभाव शुद्ध वीतराग कहा गया है। ऐसी दृष्टि करो। '**उत्तायन्तु ममल कम्म विलयं च**' **...हुए निर्मल स्वभाव को प्राप्त करने से कर्म विला जाता है। 'कम्म विलयं**' कर्म नाश पाते हैं। इसके अतिरिक्त कोई बाहर की क्रिया आचरण से कर्म नाश पाते नहीं। समझ में आया?

वर्तमान में तो इतनी गड़बड़-गड़बड़ कि ओहोहो! निश्चय की तो गन्ध भी रही नहीं और अकेला व्यवहार। तो निश्चय बिना तो भगवान व्यवहार तीन काल में कहते ही नहीं। व्यवहारमूढ़ कहते हैं। समयसार-४१३ गाथा। तेरे निश्चय बिना व्यवहार कैसा? व्यवहार का आरोप, हों! आरोप कैसा? निश्चय का भान नहीं, शुद्ध दृष्टि नहीं, आत्मा का भान नहीं। व्यवहार विकल्प को व्यवहार कहे कौन? देखे बिना अन्ध को यह अन्धा है, ऐसा जाने कौन? व्यवहार तो अन्धा है। समझ में आया? रागादि आते हैं पुण्यादि परिणाम, परन्तु वह तो अन्ध है। उसमें चैतन्यप्रकाश का अंश है ही नहीं।

भगवान चैतन्यप्रकाश की प्रतीति, ज्ञान, अनुभव बिना तेरे व्यवहार को व्यवहार कहे कौन? वह तो व्यवहारमूढ़ है। ऐसा कहते हैं। व्यवहारमूढ़ है। व्यवहार का ज्ञायक है, ऐसा नहीं।

कहते हैं कि सिद्ध भगवान उत्कृष्ट स्वभाव को देखते हैं। '**परषे परम सुभावं,**' देखो, '**परषे**' का अर्थ देखते हैं, ऐसा किया। '**परषे**' अर्थात् देखते हैं, ऐसा। सिद्ध भगवान, समझ में आया? उत्कृष्ट स्वभाव को देखते हैं। पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण दर्शन अपनी पर्याय को देखते हैं। पूर्ण पर्याय वास्तव में देखते हैं, उसमें लोकालोक आ जाते हैं, परन्तु वास्तव में तो निश्चय से अपने को ही देखते हैं। अपना केवलज्ञान, केवलदर्शन, स्व-परप्रकाशक में लोक-अलोक छह द्रव्य का ज्ञान आ गया। तो अपनी पर्याय देखने में लोकालोक का ज्ञान आ जाता है।

'**परषंतो सुद्ध कम्म विलयंति**' शुद्ध अविनाशी स्वभाव को देखने से, अनुभव करने से कर्म गल जाते हैं। देखो, समझ में आया? इस प्रकार से सिद्ध समान अपना शुद्ध स्वभाव अनुभव करने से अथवा देखने से कर्म गल जाते हैं। **जिस मार्ग से चलकर आत्मा ने सिद्ध गति पाई...** उस मार्ग से ही चलना **भव्य जीवों का कर्तव्य है।** यह शब्दार्थ लिखा है। **यह शुद्ध उपयोग ही शुद्धि का उपाय है।** कहीं-कहीं डाल दिया है, भाई! शुभ व्यवहार से निश्चय होता है, व्यवहार से निश्चय होता है। परन्तु यहाँ डालते हैं घर का। श्रावक अधिकार आगे आता है, उसमें लिया है। व्यवहार उसमें लिया है। वह तो व्यवहार किस अपेक्षा से लिया है? यहाँ लिया है। वह प्रवचनसार में लिया है न! श्रावक को वह परम धर्म। व्यवहार परम धर्म। उसमें भी ऐसा लिया है। आगे लिया है। यह दान में लिया है। मुनि को दान देने से मुक्ति होती है। दान देने से मुक्ति नहीं। परन्तु वह शुभराग है, उसे उपचार से कहा है। वह तो प्रवचनसार में भी ऐसा चला है। उसमें भी ऐसा लिया है। कहीं लिया है। लिखा नहीं। सबमें नहीं लिया। यह तो व्यवहार से लिखते हैं कि महामुनि को दान देना, वह तो विकल्प / राग है। समझ में आया? परन्तु श्रावक को अशुभ बहुत होता है, उससे बचने के लिये शुभभाव को परम धर्म कहने में आया है। प्रवचनसार में कहा है। तारणस्वामी ने कहीं कहा है। दान के अधिकार में है। यह लिखा नहीं। यह ख्याल है। लिखा है उसमें। दान देने से मुक्ति होती

है, शुद्धता होती है। यह व्यवहार से कहा है। वास्तव में परद्रव्य के प्रति लक्ष्य जाता है, वहाँ तो विकल्प उठते हैं। शुभ है। तो सम्यग्दृष्टि को अशुभ से बचने के लिये वह परम्परा राग छोड़कर शुद्ध होगा, इस अपेक्षा से उसे निर्जरा होती है, ऐसा कहा गया है। वास्तव में परद्रव्य से उस विकल्प में निर्जरा-फिर्जरा होती नहीं।

तो यहाँ कहते हैं कि शुद्ध अविनाशी स्वभाव। **भव्य जीवों को शुद्ध उपयोग ही करना कर्तव्य है।** यह जरा अशुद्ध उपयोग है, उसमें कथनशैली व्यवहार की आती है, इसलिए कहा है, यथार्थ में ऐसा नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १३, सोमवार, दिनांक - १६-०९-१९६३
गाथा-१, ३, ५०१, ५०२, श्रावकाचार - ८९, २९९,
ममलपाहुड़-२९१, प्रवचन-५

उपदेशशुद्धसार में तारणस्वामी स्वयं मंगलाचरण करते हैं।

अप्पानं सुद्धप्पानं, परमप्पा विमल निम्मलं सरूवं।
सिद्ध सरूवं पिच्छदि, नमामिहं देवदेवस्य॥१॥

देखो, '**अहं**' शब्द पड़ा है। '**नमामिहं**' चौथे पद में। मैं तारणस्वामी। '**अहं**' अर्थात् मैं। '**सुद्धप्पानं**', शुद्ध आत्मामय ऐसा शुद्ध पवित्र आनन्दकन्द जो परमात्मा अरिहन्तदेव, शुद्ध पूर्ण आत्मा प्रगट हुआ है, अनन्त चतुष्टय ऐसे '**देवदेवस्य**' देव के भी देव, देवाधिदेव। ऐसे परमदेव अरिहन्त भगवान को '**नमामि**' मैं नमस्कार करता हूँ। यह तो विकल्प है। प्रथम नमस्कार में भगवान को नमस्कार किया तो पर के नमस्कार में विकल्प से बहुमान—बहुत भक्ति करके शुभभाव आया। और जो '**विमल निम्मलं सरूवं। सिद्ध सरूवं पिच्छदि,**' कैसे हैं अरिहन्त भगवान? भावमल जो रागादि पुण्य-पाप से रहित; द्रव्यमल जो ज्ञानावरणीय आदि कर्म; नोकर्म—शरीरादि। **इनसे भी परमात्मस्वरूप सिद्ध...** यह उस स्वभाव को देखते हैं। साक्षात् केवलज्ञान के स्वभाव में पूर्णानन्द को देखते हैं। अपने स्वभाव को देखते हैं, ऐसा पहले निश्चय से लिया। लोकालोक को देखते हैं, यह व्यवहार है। अपने स्वभाव में लोकालोक आ जाते हैं। तो ऐसे परमात्मा सिद्ध भगवान साक्षात् स्वभाव को देखते हैं, वे पर्याय में देखते हैं, अपनी पर्याय में। ऐसे अरिहन्त भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थ की प्रमाणता दूसरी गाथा में है न।

आद्यं अनादि सुद्धं, उवइट्ठं जिनवरेहि सेसानं।
संसार सरनि विरयं, सम्म षय मुक्ति कारनं सुद्धं॥२॥

'**आद्यं**' कोई खास तीर्थंकर इस अपेक्षा से आद्य है। जैसे महावीर भगवान, ऋषभदेव भगवान। एक तीर्थंकररूप से गिनो तो आद्य है। और अनादि है। ऐसे गिनो तो अनादि तीर्थंकर हैं। समझ में आया? जैसे सिद्ध एक गिनो तो आदि है कि अभी सिद्ध

हुए, परन्तु ऐसे देखो तो अनादि सिद्ध है। पहले कभी सिद्ध हुए, ऐसा है नहीं। ऐसे '**आद्यं अनादि**' आद्य एक तीर्थंकर की अपेक्षा से आद्य है, अनादि अपेक्षा से अनादि।

'**सुद्धं**' ऐसे तीर्थंकर भगवान शुद्ध निर्दोष कथन ऐसा। ऐसे सिद्ध भगवान का '**उवइट्ठं जिनवरेहि सेसानं**' सर्व तीर्थंकर जिनेन्द्रों ने उपदेश किया है। जिनेन्द्रों ने अर्थात् जिनेन्द्रों ने जगत को उपदेश किया है। ऐसा सिद्ध किया है कि केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्णानन्द की प्राप्ति होने पर भी भगवान को अभी वाणी का योग है तो वाणी निकलती है। समझ में आया? पूर्णानन्द होने के पश्चात् वाणी कहाँ से आयी? परन्तु वह तो वीतराग हो गये, परन्तु वाणी तो वाणी के कारण से निकलती है। उसमें वाणी का सम्बन्ध निमित्त-नैमित्तिक है। हम बोलते हैं, ऐसा नहीं, परन्तु वाणी का इतना सम्बन्ध पूर्णानन्द का अनुभव हुआ और वाणी न हो तो भगवान ने क्या देखा और क्या जाना, यह दूसरे को समझ में नहीं आयेगा। कहो, समझ में आया?

तीर्थंकरादि प्रवाह की अपेक्षा से अनादि। अनादि प्रवाह है न तीर्थंकर का? कभी पहले तीर्थंकर थे, ऐसा है नहीं। अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... तीर्थंकर चले ही आते हैं अनन्त। महाविदेहक्षेत्र में भी अनादि से चलते हैं, यहाँ भी अनादि से चलते हैं। '**उवइट्ठं जिनवरेहि सेसानं**' यह जिनवरदेवों ने सर्व जीवों को उपदेश किया है। सर्व जीवों को। '**संसार सरनि विरयं**' संसार के भ्रमण से छुड़ानेवाले। यह सिद्धान्त। उपदेश क्या किया है? संसार अर्थात् विकार के उदयभाव जिनसे चार गति मिलती है, ऐसे उदयभाव को छुड़ाने का उपदेश भगवान ने किया है। चार गति को प्राप्त करने का उपदेश भगवान की वाणी में है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह सब तो इसे आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अनादि काल से करता है। तीर्थंकर जिनेन्द्रों ने उपदेश संसार के भ्रमण से छुड़ानेवाला (किया है)। संसार सरणी... सरणी... सरणी... प्रवाह चलता है न? उससे छुड़ाने का उपदेश भगवान ने किया है। ऐसा कहकर क्या कहते हैं? कि जिससे भव मिले, ऐसा उपदेश भगवान की वाणी में नहीं है। भव का अभाव हो, ऐसा उपदेश वाणी में आया है। समझ में आया? पुण्य और पाप का फल स्वर्ग-

नरक है। तो वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं। वह कहीं बताना नहीं है। वह तो अनादिकाल से करता आया है। तो **संसार के भ्रमण से छुड़ानेवाला और...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसे कहते हैं ? यह पंचम काल में तो है। अभी ५०० वर्ष हुए हैं। यह तो जगत के लिये भगवान ऐसा कहते हैं, ऐसा तो कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से यह उपदेश तो करते हैं। उसमें क्या हुआ ? धर्म क्या आया ? भगवान की वाणी में धर्म है, वह अचिन्त्य है ? अपूर्व है ? या कोई अनादि काल से करता है, ऐसी चीज़ है ? समझ में आया ? भगवान की वाणी में भगवान होने का उपदेश है। संसार का नाश करने का उपदेश है। तो जिस कारण से संसार मिलता है, वह तो पुण्य-पाप के भाव हैं। वह तो अनादि से करता आया है। उसमें कोई नवीनता नहीं है। वीतराग वह भी कहे तो संसार हो तो मुक्ति के मार्ग में अन्तर क्या रहा ? समझ में आया ?

तारणस्वामी कहते हैं कि भगवान ने तो '**संसार सरनि विरयं,**' का उपदेश दिया है। नाश करने का उपदेश दिया है। सेठी ! '**सम्म षय मुक्ति कारनं सुद्धं।**' देखो, कर्मों का क्षय होकर मोक्ष का मार्ग मुक्ति का कारण... है न ? '**मुक्ति कारनं**' है न ? '**मुक्ति कारनं**' देखो, '**मुक्ति कारनं**' अपने यह चलता है मोक्षमार्ग। मुक्ति—मोक्ष परमानन्द, उसका कारण बताया है। तो यह कारण कैसा बताया ? शुद्ध आत्मअनुभव। मुक्ति का कारण क्या है ? शुद्ध। पहला शब्द पड़ा है। अकेला आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यमूर्ति, वह तो द्रव्य है, उसकी शक्तियाँ, वे गुण हैं और मुक्ति का कारण, वह पर्याय है। समझ में आया ? '**संसार सरनि**' यह भी एक विकारी पर्याय है। और इसके नाश का उपाय कहा, वह मोक्ष का मार्ग भी एक पर्याय है।

'**मुक्ति कारनं सुद्धं।**' मुक्ति का उपाय अन्तर में शुद्ध भगवान अपना परमात्मा, उसकी तुम श्रद्धा, अनुभव करो और स्थिरता हो, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। अनन्त जिनेन्द्रों ने आद्य, अनादि तीर्थंकरों ने ऐसा कहा है। समझ में आया ? देरियाजी ! देखो,

संसार में भटकने का, कैसे संसार मिले ? और कैसे पुण्य मिले ? ऐसा उपदेश भगवान की वाणी में नहीं है। समझ में आया ? देखो, मंगलाचरण किया दो में। तीसरी गाथा जरा ले लेते हैं, देखो। एक ... लेना है न। और वहाँ उपदेश शुद्धसार शुरु होता है।

उवएस सुद्ध सारं, सारं संसार सरनि मुक्तस्य।
सारं तिलोय मइओ, उवइट्ठं परम जिनवरेंदेहि॥३॥

'**उवएस सुद्ध सारं,**' उपदेशशुद्धसार ग्रन्थ को अथवा इस ग्रन्थ में जिनधर्म का शुद्ध कल्याणमय मार्ग बतलाया है। उसे '**उवइट्ठं परम जिनवरेंदेहि**' भगवान परम जिनवरेन्द्रो। जिनवरेन्द्रो। जिन—समकिती को भी जिन कहते हैं। जिनवर—गणधर को कहते हैं। जिनवरेन्द्र—तीर्थंकर को कहते हैं। जिनवर इन्द्र ऐसे जिनेन्द्रों ने कौन सा मार्ग कहा ? उपदेशशुद्धसार। उपदेश का शुद्धसार भगवान ने कहा। क्या कहा ? '**संसार सरनि मुक्तस्य।' संसार के भ्रमण के छुड़ाने का यह मार्ग है।** भगवान के उपदेश में तो यह विकल्प उठता है पुण्य, दया, दान, व्रत आदि, उसे छुड़ाने का भगवान का उपदेश है। समझ में आया ? बन्धमार्ग से छुड़ाने का, मोक्षमार्ग का उपाय कराने का भगवान के उपदेश में आया है।

'**उवइट्ठं परम जिनवरेंदेहि**' अब '**सारं तिलोय मइओ,**' इसका अर्थ जरा इन्होंने पयोपद किया है। परन्तु इन तीन लोक में प्रदीप—दीपक समान जो भगवान ने उपदेश किया, वह तीन लोक में साररूप है। यहाँ तीन लोक में जितने पद और मार्ग, उन सबसे ऐसा अर्थ किया है। कहो, समझ में आया ? जैसे तीन लोक का दीपक उपदेश है। यह वस्तु मार्ग है, ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रों ने कहा है, ऐसा तारणस्वामी कहते हैं कि ऐसा मैं कहूँगा। मेरे घर की कल्पना की बात कहूँगा नहीं। समझ में आया ? कहो, देरियाजी! बड़े भाई कहे, मंगलाचरण करो। मंगलाचरण किया। सवेरे लाये थे।

अब अपने चलती ५०१ गाथा। चलती है न ? देखो! क्या कहते हैं मोक्षमार्ग ? वहाँ कहा कि भगवान ने मोक्षमार्ग कहा है, वह यह मोक्षमार्ग चलता है। ५०१ (गाथा)।

बोलंतो कम्म जिनियं, बोलन्तो सुद्ध कम्म विलयंति।
धरयंति धम्म सुक्कं, धरयंतो सूषम कम्म षिपनं च॥५०१॥

खपाना, भाई! खपाना भाषा प्रयोग की है। **श्री जिनेन्द्र अर्हंत ने जो वाणी कही...** भगवान के त्रिलोकनाथ के मुख से जो वाणी निकली। निमित्त से कथन तो ऐसा ही आवे। '**बोलंतो कम्म जिनियं,**' जरा शीतलप्रसाद ने इसका... शब्द किया है। परन्तु इसका अर्थ कि भगवान ने जो वाणी में कहा मोक्ष का मार्ग, अपने शुद्ध स्वरूप की निर्विकल्प प्रतीति, ज्ञान, रमणता, वह वाणी में था, उसके वाच्य का उसने अनुभव किया। वह वाचक है। उसका वाचक शब्द है? शब्दों। शब्दों में... पहले शब्दों कहा था। '**बोलंतो कम्म जिनियं,**' जिनेन्द्र अरिहन्त ने वाणी कही है। इसलिए वाणी कोई अपुरुषेय है, अद्धर से वाणी निकली है, ऐसा नहीं है। जिनवरदेव अरिहन्त को सर्वज्ञपद जो प्रगट हुआ तो ॐ ध्वनि खिरी। समझ में आया? ॐ एक आत्मा भी है और एक ॐ यह वाणी है। दो प्रकार के ॐ हैं। ॐ के दो पद हैं। एक शब्द में ॐ है, एक ॐ के वाच्य आत्मा को भी ॐ कहते हैं। ऐसे पूर्णपद की प्राप्ति हुई तो भगवान के मुख में से ध्वनि निकली। '**बोलंतो**' जिन अर्हंत वाणी। दिव्यध्वनि है मूल तो। तो ऐसा कहा कि भगवान बोलते हैं, इसका क्या अर्थ है? कि सर्वज्ञपद होने के पश्चात् वाणी निकलती है। वाणी निकलती है, उसका उपदेश यहाँ लिया है। समझ में आया? कितने ही केवली मौन होते हैं। केवलज्ञान होता है, परन्तु वाणी नहीं निकलती। तो वाणी निकले बिना दुनिया को उपदेश का निमित्त नहीं मिलता। तो बोलनेवाले केवली लिये हैं।

मुमुक्षु : मूक केवली नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूक केवली नहीं।

'**बोलंतो वयणं जिनियं**' जिनेन्द्रदेव भगवान की वाणी ॐ ध्वनि खिरी सभा में। '**बोलंतो सुद्ध कम्म विलयंति**' और उस वाणी में शुद्ध स्वभाव वाच्य आया कि अहो! तेरा परमात्मा पूर्णानन्द, तेरे गर्भ में सिद्ध भगवान स्थित हैं। तेरी शक्ति में तेरे ध्रुवपने में तो परमात्मा हैं। वह द्रव्य है। शक्तियाँ हैं, वे गुण हैं और उनका ध्यान करे, वह पर्याय है। समझ में आया? तो कहा, कि '**सुद्ध बोलंतो**' वाणी को शुद्धरूप यथार्थ कहते हुए उसका मनन करते। मनन का अर्थ अन्तर एकाग्र होकर। एकाग्र होना, वह पर्याय है। किसमें एकाग्र होना है? कि त्रिकाल द्रव्य और गुण जो शुद्ध स्थित हैं, उसमें एकाग्र

होना। तो पहले उसे द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान होना चाहिए। यहाँ तो खबर नहीं कि द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या? यह सर्वज्ञ वाणी के सिवाय तीन काल में दूसरे को खबर होती नहीं। वीतराग के सिवाय द्रव्य, गुण और पर्याय तीन बोल कहीं अन्यत्र हैं नहीं।

तो कहते हैं कि वीतराग की वाणी में शुद्ध स्वभाव का अनुभव आया, उसमें एकाग्र होकर '**कम्म विलयंति**' कर्म विलय हो जाते हैं। एक सिद्धान्त यह कहा कि कर्म थे, कर्म निमित्तरूप से थे। कर्म नहीं थे और अनादि से निर्मल हैं, ऐसा नहीं। अनादि से आत्मा में कर्म का निमित्त सम्बन्ध था, विकार भी था। भगवान का उपदेश आया कि अहो! विकार और कर्म का लक्ष्य छोड़ दे और तेरा स्वरूप परमानन्द मूर्ति है अखण्ड आनन्द है, उसमें तेरी दशा को जोड़ दे। वर्तमान पर्याय को उसमें जोड़ दे, इसका नाम मोक्षमार्ग है। समझ में आया? खबर नहीं होती, वाँचे नहीं, विचारे नहीं। 'वांचे पण नहिं करे विचार।' यह आता है। हमारे यहाँ दलपतराम हो गये हैं न? खबर है न? हाँ। वे 'वांचे पण नहिं करे विचार, ते समझे नहिं सघळो सार।' यह हमारे दलपतराम कवि बड़े हो गये हैं। कदड़ा कहलाते थे। कदड़ा अर्थात् कवि दलपतराम डाह्याभाई। हमारी पहली परीक्षा के समय वे थे। वे स्वयं नहीं थे परन्तु... नानाभाई तो यहाँ थे न। उनके पुत्र दलपतराम। बड़े कवि। फिर यह बात करते थे। वे स्वयं कवि थे, भाई! 'वांचे पण नहिं करे विचार, ऐ समझे नहीं सघळो सार।' शास्त्र वाँच ले, पढ़ ले परन्तु क्या कहना है, उसमें क्या मर्म है, यह समझे नहीं तो सार समझ नहीं सकता। रतनलालजी! देखो, यह समझना पड़ेगा, हों! बहियों में कितना ध्यान रखते हो? बहुत ध्यान रखते हो।

मुमुक्षु : बहियों में मूल बात है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें मूल बात है? या आत्मा में मूल बात है? पैसे हैं न पैसे, वह मूल बात है। यह (मूल बात) है।

भगवान! तेरी चीज़ में परमात्मा पड़ा है। ऐसा अखण्ड आनन्दकन्द तेरे गर्भ में—शक्ति में पड़ा है। समझ में आया? क्या कहते हैं? **धारण करो...** क्या करके धारण करो? देखो, लिया। '**धरयंति धम्म सुक्कं**' ओहो! देखो, है तो पाँचवें काल के तारणस्वामी

परन्तु कहते हैं कि धर्म—शुक्लध्यान धारण करो। ऐसा भगवान कहते हैं, देखो! **जो भव्य जीव धर्मध्यान, शुक्लध्यान धारण करते हैं...** पाठ में है न '**धम्म सुक्कं,**' '**धरयंति**' निर्मल निर्विकारी पर्याय। अल्प निर्मल वह धर्मध्यान और विशेष निर्मल निर्विकारी वह शुक्लध्यान। है तो दोनों पर्याय, परन्तु दोनों पर्याय अविकारी अरागी पर्याय है। समझ में आया? देखो, '**धरयंति धम्म सुक्कं,**' धर्मध्यान और शुक्लध्यान पर्याय में शुद्ध अखण्डानन्द में एकाकार होकर, पुण्य-पाप के विकल्प का लक्ष्य छोड़कर चैतन्य की सम्यग्दृष्टि स्वयं करना, उसमें ज्ञान करके रमना, उसका नाम धर्मध्यान और शुक्लध्यान है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान कोई विकल्प और शुभराग है, वह धर्मध्यान—शुक्लध्यान है ही नहीं। समझ में आया?

'**धरयंतो सूषम कम्म षिपनं च**' देखो भाषा! कहते हैं कि शरीर तो ठीक, परन्तु अन्दर सूक्ष्म परमाणु के कर्म बँधे हैं। आठ कर्म सूक्ष्म हैं। **ऐसा शुद्ध ... धरने से, शुद्ध ध्यान को धरने से सूक्ष्म कर्म क्षय हो जाता है।** यह सूक्ष्म कर्म विलय हो जाता है, नाश हो जाता है। तो उस कर्म में ऐसी सामर्थ्य है कि स्वयं के कारण से यहाँ ध्यान करे, नाश करने की पर्याय उसकी सामर्थ्य से खिर जाता है। सूक्ष्म कर्म खिर जाता है, ऐसा शब्द लिया है। सूक्ष्म रजकण आठ कर्म हैं सूक्ष्म। तो ... है न? आठ ... कर्म में। स्थूल, समझ में आया? कर्कश, भारी, हल्का, कोमल और कठोर, तो उसमें स्पर्श नहीं। चार सूक्ष्म स्पर्श है। कर्म में चार सूक्ष्म स्पर्श है। ठण्डा, गर्म समझ में आया? स्निग्ध और रूक्ष। ये चार स्पर्श कर्म में हैं। और आठ स्पर्श है यह शरीरादि में चार-चार स्पर्श विशेष है। उसमें तो सूक्ष्म चार स्पर्श है। तो कहते हैं कि ऐसे सूक्ष्म कर्म का शुद्ध धर्मध्यान की पर्याय द्वारा क्षय—नाश होता है। दूसरे कोई अपवास-बपवास और व्रत के विकल्प से कर्म का नाश कभी होता नहीं। समझ में आया? विकल्प उठे कि मैं ऐसा करूँ और वैसा करूँ, वह तो शुभराग है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। सूक्ष्म कर्म का नाश तो धर्मध्यान से होता है। कहो, मोतीरामजी! कठिन बात परन्तु यह सब।

दो नय भी चाहिए न! निश्चय और व्यवहार। व्यवहार जाननेयोग्य है और निश्चय अन्दर आदरनेयोग्य है। अन्दर में महाव्रत आदि के विकल्प आते हैं, परन्तु वह राग है, बन्ध का कारण है। मुक्ति का कारण नहीं है। भगवान आत्मा का निर्विकल्प

ध्यान, श्रद्धा, ज्ञान और रमणता एक ध्येय लगाकर अन्तर में लीन होना, ऐसा भगवान कहते हैं। भगवान ने ऐसा उपदेश दिया कि उससे कर्म खिरते हैं। उस उपदेश को शुद्ध उपदेश कहा जाता है। दूसरा उपदेश दे कि पुण्य से (कर्म का क्षय) होता है, वह अशुद्ध उपदेश मिथ्यादृष्टि का है। वह वीतराग की वाणी का और वीतराग का उपदेश तीन काल में नहीं है।

मुमुक्षु : उपवास तो थोड़े.... करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा कौन करता है? राग मन्द किया, वह करता है। दूसरा क्या किया तूने? यह राग मन्द है, पुण्यबन्ध है। उसमें क्या है? स्वभाव की अन्तर दृष्टि और लीनता बिना निर्जरा और संवर कभी तीन काल में होते नहीं। वह तो जानने के लिये पूछते हैं, हों! सेठी! अब तो उसे पक्का हो गया है। पहले था। पहले बहुत गड़बड़ थी। पहले तो खलबलाहट थी आये तब। आये तब था, ऐसा कहा, मैंने भी ऐसा कहा। आये तब खलबलाहट थी। भाई! सुन... सुन...!

५०१। यह वाणी-वाणी कहा न? वाणी का तो निमित्त है। समझ में आया? वाणी की ओर लक्ष्य रहे, तब तक तो शुभविकल्प है। क्या कहते हैं? वाणी की ओर लक्ष्य रहे कि भगवान ऐसा कहते हैं... ऐसा कहते हैं... ऐसा कहते हैं... ऐसा कहे... तब तक तो शुभराग है। परन्तु उसे छोड़कर उन्होंने कहा, ऐसा आत्मा में... यह आया है, भाई, हों! यह ममलपाहुड़ लो, देखो! शब्दों को छोड़कर। २५१ पृष्ठ पर है। ममलपाहुड़ देखो। तुमको यहाँ दिया है। २९१। ... है उसमें? २४। हाँ ठीक वहाँ है। २४-२४। २९१ में २४ बोल है न। २४वाँ बोल नहीं? देखो। ... जो कोई शब्दों को छोड़कर। शब्द के ऊपर लक्ष्य रहे, तब तक तो विकल्प है। शोभालालजी! यह तुमने अभी तक पैसे-बैसे में ध्यान विचार नहीं किया तुमने। जैन वाणी को नमस्कार! जय भगवान... जय भगवान...!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल ज्ञान नहीं तब तो ऐसा कहते हैं। जड़ से ज्ञान होता है? वह तो परद्रव्य की पर्याय है। परद्रव्यनय लक्ष्यरूप रहे और अपने में जो ज्ञान का

उघाड़ हुआ, वह भी स्वयं से है, परन्तु वह परलक्ष्यी ज्ञान है, स्वलक्ष्यी ज्ञान—सम्यग्ज्ञान नहीं है। क्या कहते हैं?

फिर से। देखो यहाँ कहा न? .... **शब्दों को छोड़कर शब्दों से अतीत आत्मा का अनुभव करता है।** समझ में आया? वाणी ऊपर यह वाणी, यह वाणी, यह दोपहर में नहीं चलता? कि यह वाणी ऐसा कहती है, यह वाणी ऐसी है। यह तो उसका परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य है। तब तक तो विकल्प—शुभराग है, शुभराग है। पुण्यबन्ध का कारण है। अबन्ध परिणाम नहीं। जब तक शब्द का लक्ष्य रहे, तब तक शुभराग है। वह लक्ष्य और राग को छोड़कर अपने ज्ञायक सन्मुख का स्वलक्ष्यी ज्ञान-दर्शन करे, तब पर्याय में निर्मलता प्रगट हो, उसका नाम भगवान मोक्षमार्ग फरमाते हैं। सेठी! देखो, ... **छोड़कर शब्दों से अतीत आत्मा का अनुभव करता है। वह चारित्र के विकल्प से शून्य होकर...** कहते हैं न .... दूसरा शब्द। चारित्र के विकल्प से शून्य। मैं महाव्रत पालता हूँ, मैं अहिंसा पालता हूँ, वह विकल्प है। उससे शून्य होकर अन्दर स्वरूप में रमणता करना, यह उसका नाम भगवान (चारित्र कहते हैं)। इस ममलपाहुड़ का यह अर्थ है। अमलसार। ममल अर्थात् अमलसार। मल बिना का सार, उसे भगवान ने कहा है। देरियाजी! देरियाजी ध्यान तो बराबर रखते हैं। समझ में आया?

जिनेन्द्र परमात्मा हो जाता है। देखो, लो! .... अपना शुद्ध आत्मा वाणी से कहा, उसे लक्ष्य में लेना, परन्तु लक्ष्य जब तक परलक्ष्यी लक्ष्य है, तब तक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान नहीं। यह दोपहर में नहीं चलता? मैं बद्ध हूँ, अबद्ध हूँ—ऐसा विकल्प भी सम्यग्दर्शन नहीं। यह वाणी तो परचीज़ है। तो कहा कि छोड़कर। समझ में आया? लक्ष्य छोड़ दे। शब्दों का लक्ष्य छोड़ दे, जिनवाणी का लक्ष्य छोड़ दे। देव-गुरु-शास्त्र भी परद्रव्य हैं। उनकी भक्ति का राग आता है, परन्तु उसे छोड़ दे। लक्ष्य में से छोड़ दे। लक्ष्य में से छोड़े बिना अपने स्वलक्ष्य की प्रतीति नहीं होती। सच्चिदानन्द मूर्ति की प्रतीति कभी होती नहीं। समझ में आया? शून्यभाव और है न सब? **आत्मज्ञान को प्रगट करके जो शून्यभाव में समा जाता है।** देखो, शून्यभाव में समा जाते हैं। क्या? शून्यभाव त्रिकाली स्वभाव। उसमें समा जाते हैं, वह पर्याय। शून्यभाव। उसमें विकल्प नहीं, राग नहीं, दया, दान, विकल्प वृत्ति नहीं, ऐसा शून्यभाव अपना त्रिकाल स्वभाव।

उस शून्यभाव में समा जाना अथवा एकाकार होना, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। उसका नाम अमलसार है—ममलसार है। बाकी मल का सार है। समझ में आया?

और २४वाँ लिया है न? उसके पहले भी आया देखो एक १५वाँ। २९० में आया।

.....

जो कोई शब्दों को छोड़कर शब्द से अतीत आत्मा में रमण करता है। १५ में है। पहले वह २४वाँ लिया था। आत्मा क्या शब्द के लक्ष्य से प्राप्त होता है परलक्ष्य से? वह तो परद्रव्यानुसारी वृत्ति हुई। समझ में आया? भगवान की वाणी सुनता है, गणधर सुनते हैं, परन्तु है विकल्प। इन्द्र सुनते हैं, वह परलक्ष्यी विकल्प। उस ओर का लक्ष्य छोड़कर जितने स्वभाव सन्मुख की एकाग्रता होती है, उसे भगवान ने मोक्षमार्ग का उपदेश कहा है। उसे मोक्षमार्ग कहा है। कठिन है। जगत ने कभी सुना ही नहीं। उल्टे-उल्टा उदाहरण—दृष्टान्त मारकर उल्टे-उल्टा। ऊंधा को क्या कहते हैं? उल्टा-उल्टा। वीतरागमार्ग से उल्टा कहे और हम वीतरागमार्ग कहते हैं। वीतरागमार्ग में तो राग का अभाव बताते हैं कि वीतराग राग का सद्भाव बताते हैं? समझ में आया?

तो कहते हैं कि उस वाणी में कहा हुआ भाव, वह अपने स्वरूप के लक्ष्य से अन्दर समझकर। भाव क्या कहा था? लो, एक बात रह गयी। ... भाई! भगवान की वाणी में यह आया था। क्या आया था? कि तू तेरा शुद्ध अखण्डानन्द प्रभु का ध्यान कर। यह वाणी में आया था, ऐसा किया। वाणी में यह आया था। धर्म और शुक्लध्यान मोक्ष का मार्ग, ऐसा वाणी में आया था। समझ में आया? मोक्षमार्ग है न? यह मोक्षमार्ग की बात चलती है। ऊपर मोक्षमार्ग का चलता है अपने। आज तो पाँचवाँ दिन है। पाँचवाँ है या नहीं? देखो, क्या कहते हैं? भगवान की वाणी में ऐसा आया कि धर्मध्यान, शुक्लध्यान। आया ऐसा किया। स्वरूप में ध्यान अन्तर एकाग्रता से उससे कर्म नाश होते हैं, ऐसा भगवान की वाणी में आया था। ऐसे ध्यान से कर्म खिरते हैं। वाणी का सार ऐसा धर्मध्यान जिसने किया, उसे कर्म खिरते हैं, दूसरे को खिरते नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। सम्यग्दृष्टि का शुभ, वह पुण्यबन्ध का कारण है। यह आयेगा। अभी सलंग पुस्तक होती है न। बम्ब (ढ़ेर) लगेगा बड़ा। सेठी! कलशटीका अभी बाहर प्रकाशित होगी। तीन हजार पुस्तकें बाहर प्रकाशित होनेवाली हैं। बहुत सरस अध्यात्म। पुरानी भाषा ढूंढ़ारी, उसे सुधारकर। उसमें हमारे हिम्मतभाई सुधारे तो फिर... कहो, समझ में आया? कलशटीका। यह अमृतचन्द्राचार्य के कलश हैं न? उनकी पुरानी टीका है ढूंढ़ारी भाषा। उसमें से समयसार नाटक बनारसीदास ने बनाया है। वह ऐसी सरस है। ऐसा अध्यात्म है (कि) गोली मार दी एकदम। राजमल की टीका। सम्यग्दृष्टि हो या अज्ञानी हो, जिसे शुभभाव विकल्प आवे, उन सबको पुण्यबन्ध का कारण है, वह धर्म-बर्म नहीं। अभी कितने ही ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि का शुभभाव तो कुछ निर्जरा में है। कुछ सहायता करता है संवर में। धूल में भी नहीं, सुन तो सही। समझ में आया?

मुमुक्षु : परलक्ष्यी भाव भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी उसमें रिकॉर्डिंग में ऐसा लिखा है। शुभभाव में मात्र बन्ध है, ऐसा नहीं, थोड़ा अबन्ध है। सब झूठ है। ऐसी बात ही नहीं। तीन काल, तीन लोक में 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' परमार्थ का पंथ दो, तीन, चार होते नहीं। किसी को राग से भी धर्म हो, किसी को अराग से धर्म हो, किसी को पुण्य से धर्म हो, किसी को अन्तर पवित्रता से धर्म हो, ऐसा मार्ग भगवान का है नहीं। आता अवश्य है, राग आता है। यह नमस्कार नहीं किया पहले?

मुमुक्षु : यह तो लिखने का भाव है यह....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखने का भाव हुआ, वह क्या है? शुभभाव है। यह पुस्तक लिखने का भाव है, वह शुभराग है। वह कोई संवर-निर्जरा नहीं। व्यवहार आता है, होता है। यह लिखने का लक्ष्य है, वहाँ शुभराग है, विकल्प है, पुण्य है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि भाई! यह विकल्प है, हमारा स्वरूप नहीं। हम लिखते नहीं, हमारी क्रिया नहीं। यह हमारी क्रिया है, ऐसा तुम मानना नहीं। समझ में आया?

अहो! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ प्रभु परमात्मा परमेश्वर देखो। ऐसा मार्ग है। उसमें कुछ भी फेरफार करना, वह निगोद में जाने की चीज़ है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त-अनन्त हुए, अनन्त वर्तमान में संख्यात केवली महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र यहाँ सिद्ध किया था, भाई! वहाँ किया है। महाविदेह कुछ किया है या नहीं? ममलपाहुड़ दूसरे भाग में है। दूसरा भाग है? देखो २७१। यह तो अपने महाविदेह सिद्ध करना है, हों! लोग कहते हैं कि ऐसा नहीं और वैसा नहीं। देखो, २७१ पृष्ठ। १०-११वाँ पद है। क्या है यह? चौदह पूर्व रासा। चौदह पूर्व रासा, गाथा १७४९ से १७६७। देखो!

जं नंत उवन हिययारं, सह रमन नंत सहयारं।
भय सल्य संक सुइ विलयं, तं नंत धर्म सिद्धि मिलियं॥१०॥

यह एक पद हुआ, उसकी व्याख्या। **'जं नंत उवन हिययारं,'** हितकारी अनन्त ज्ञान का प्रकाश हुआ है भगवान को। हितकारी केवलज्ञान का प्रकाश हुआ। **उसमें रमण कर अनन्त सहकारी गुण प्रगट होते हैं।** उसमें रमण करनेवाले भी अनन्त-अनन्त ज्ञानस्वभाव में रमणता करते हुए अनन्त गुण प्रगट होते हैं। **उनके भय, शल्य शंका बिला गयी है।** सम्यग्दृष्टि को भी अन्दर रमणता करने से भय, शल्य और शंका नाश पा जाती है। सेठ! समझ में आया? भय, लज्जा, गारव से करना नहीं, उसका इनकार करते हैं। कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को बाहिर् लज्जा-गारव से भी नमन करना नहीं। यह कहीं है अवश्य भाई इसमें भी, हों! कहीं है अवश्य। डाला है कहीं? है अवश्य कहीं। सबने अलग-अलग गाथा लिखी हो। क्या कहते हैं?

अनन्त स्वभाव के धारी अर्हंत जिन सिद्धभाव को प्राप्त हो जाते हैं। लो! **ऐसा भय, शल्य त्यागकर अपना स्वरूप में अखण्डानन्द में रमते अनन्त स्वभाव के अरिहन्त सिद्ध हो जाते हैं।** महाविदेह। देखो! महाविदेह है। महाविदेहक्षेत्र अभी है। तीर्थंकर विराजते हैं। कोई गप्प नहीं है। कोई कहे कि इतनी जमीन है, इतनी है, धूल है और... सेठ! देखो, तारणस्वामी कहते हैं। शास्त्र में तो है, उसका अनुसरण करके लिखा है। क्या कहा? देखो!

'जं दिप्ति दिस्टि सह रूवं,' श्री अर्हंत का स्वभाव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन

स्वरूप है। 'विन्यान विंद सुइ सुरयं।' अपने ज्ञान में मग्न हैं भगवान। **सूर्य समान प्रभावान है।** सूर्य समान तो जड़ की उपमा है, हों! **'सुरयं'** है न? निर्मल सूर्य समान चैतन्य सूर्य है, चैतन्य सूर्य है। **'जं विद्यमान जिन उत्तं,'** ओहो! जैसे विद्यमान भगवान विराजते हैं। वर्तमान तीर्थंकरदेव महाविदेहक्षेत्र में (विराजते हैं)। त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में करोड़पूर्व का आयुष्य है। पाँच सौ धनुष का देह है और करोड़ों-अरबों वर्षों से विराजमान हैं। मुनिसुव्रत भगवान के समय में मुनिपना लिया था, अभी है। आगामी चौबीसी में बारहवें-तेरहवें तीर्थंकर होंगे, तब मुक्ति प्राप्त करेंगे। तब तक... चौरासी। श्वेताम्बर में चौरासी (लाख पूर्व)। यहाँ करोड़ पूर्व लिखा है। यहाँ तो शब्द शब्द में अन्तर है। श्वेताम्बर में चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ मोक्ष जायेंगे। यहाँ बारहवें तीर्थंकर, तेरहवें तीर्थंकर जब होंगे आगामी चौबीसी में, तब मोक्ष जायेंगे। तीर्थंकर भगवान सीमन्धर भगवान। सीमन्धर भगवान यह चलते हैं, देखो! **'जं विद्यमान जिन उत्तं,'** है या नहीं इसमें? ममलपाहुड़ दूसरा भाग है। दूसरा भाग, दूसरा भाग। समझ में आया? विद्यमान भगवान तीर्थंकर विराजते हैं। **श्री वर्तमान विदेहक्षेत्र में रमण करनेवाला सीमन्धर आदि तीर्थंकरों ने कहा है। ऐसा वर्तमान तीर्थंकरों कहते हैं...** कि ऐसे सिद्ध भगवान और अरिहन्त अपने स्वरूप में रमणता करते हैं। यह भी खबर नहीं तुमको। हाथ ऐसा करते हैं, भाई। तुम्हारी दलाली करते हैं।

त्रिलोकनाथ... देखो, यहाँ कहा कि **अर्हंत का स्वभाव और ज्ञानस्वरूप विज्ञान ज्ञान सूर्य समान प्रभावान ऐसा वर्तमान विदेहक्षेत्र में रमण करनेवाला सीमन्धर आदि कहा, उसकी वाणी कहे अनुसार सिद्ध स्वभाव में लीन है।** भगवान ने कहा, ऐसा कहते हैं। कोई कहे कि यह भगवान वर्तमान में कहते हैं, ऐसे ही सिद्ध भगवान अपने स्वरूप में लीन हैं। सिद्ध भगवान सिद्ध किये, तीर्थंकर सिद्ध किये, वाणी सिद्ध की, महाविदेहक्षेत्र सिद्ध किया। विद्यमान तीर्थंकर विराजते हैं—बीस तीर्थंकर। यह इतना क्षेत्र नहीं। इतने में यह है। भूगोल-खगोल की कुछ शंका हो। कुछ भान नहीं। श्रद्धा

क्या चीज़ है। अभी व्यवहारश्रद्धा की खबर नहीं। तो कहते हैं कि देखो! तारणस्वामी समाज के कहलाये और तारणस्वामी कहते हैं, उनकी आज्ञा को मानना नहीं, समझना नहीं। ऐई! शोभालालजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। पति की ओढ़नी ओढ़ना। ओढ़णा समझते हो? साड़ी। पति की आज्ञा नहीं मानना। क्या कहते हैं? सर्व जिनेन्द्रों ने ऐसा कहा कि जैसी वाणी भगवान के मुख में से अभी निकलती है, वैसे ही सिद्ध भगवान अपने स्वरूप में रमते हैं। वे भी रमते हैं, यह भी रमते हैं। वाणी निकली है, इतना शरीर में अन्तर है, दूसरा कोई अन्तर नहीं। समझ में आया?

उनकी वाणी के अनुसार वे सिद्ध स्वभाव में लीन है। लो! अपने तो यह कहना था। यहाँ तो महाविदेहक्षेत्र जरा विद्यमान तीर्थंकर विराजते हैं। बहुत काल से विराजते हैं। उन बीसवें मुनिसुव्रत भगवान जब यहाँ हुए, तब तो भगवान ने दीक्षा ली है, केवलज्ञान प्राप्त हुए। केवलज्ञानी विराजते हैं। त्रिकाल ज्ञान में विराजते हैं अभी। वे करोड़ों... कुन्दकुन्दाचार्य गये थे दो हजार वर्ष पहले संवत् ४९। तब भी केवलज्ञान में थे। इससे पहले अरबों वर्ष केवलज्ञान में थे। अभी अरबों वर्ष केवलज्ञान में रहेंगे शरीर (सहित) में। यह विद्यमान तीर्थंकर विराजते हैं, उनकी वाणी ऐसी है। देखो, तारणस्वामी ऐसा तो सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निकाला अलग-अलग निकालकर इन सेठ के कारण से है, भाई! सेठ कहते हैं कि हमारा करो भाई! कुछ वाँचते हैं। समझ में आया? आहाहा! फिर क्या आया था वह? लज्जा। किसमें? श्रावकाचार में। ८९ गाथा है। देखो! श्रावकाचार में श्रावक को कहा है। यथार्थ दृष्टि जिसकी हो...

कुगुरुं संगते जेन, मानते भय लाजयं।
आसा स्नेह लोभं च, मानते दुर्गति भाजनं॥८९॥

शोभालालजी! यह घर की बात बताते हैं।

कुगुरुं प्रोक्तं जेन, वचनं तस्य विस्वासतं।
विस्वासं जेन कर्तव्य, ते नरा दुष भाजनं॥९०॥

देखो, **जो कोई कुगुरु की संगति करते हैं...** सत्य दृष्टि का भान नहीं, कुलिंग लेकर पड़ा है, सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। और उससे विरुद्ध वीतरागमार्ग से विरुद्ध प्ररूपणा करता है, विरुद्ध वेश धारण करता है। ऐसी संगति करता है **और भय, लाज, आशा, प्रेम, लोभ के कारण...** देखो, यह सब तुमको लागू पड़ता है। है न! क्या है? लाओ। सेठ को बुलाओ। कुछ देंगे हजार-दो हजार। देरियाजी कहते हैं। मोभ हो न मोभ? अग्रसर है न भाई! क्या कहते हैं? देखो, तारणस्वामी कहते हैं कि दुनिया के भय से... क्या करें? पुत्र-पुत्री का विवाह नहीं होगा, अकेला पड़ जाऊँगा। ऐसा भय। लज्जा... भाई! मैंने अभी तक सब किया है। अब छोड़ूँ तो मेरी इज्जत नहीं रहेगी। लज्जा। **आशा...** मेरी कोई आशा, बड़ा उसका सहकार मिले, अपने साथ रहे, ऐसी आशा रहे और **प्रेम...** प्रेम करता है कुगुरु का। और लोभ के कारण से। इतने बोल लिये हैं मूल गाथा में।

उनकी प्रतिष्ठा करते हैं... देखो, **मानते...** बहुमान करते हैं। **वे मनुष्य... 'दुर्गति भाजनं' कुगति के पात्र हैं...** समझ में आया? श्रावकाचार में बताया है। यह ८९ गाथा है। ८९। लिख लेना। अपने महेन्द्रभाई है न। लिख लेना। पश्चात् **जो मनुष्य दुर्गतिपात्र है... कुगुरु के द्वारा जो कुछ कहा गया, यह वचन विश्वास करनेयोग्य नहीं।** अज्ञानी अपनी कल्पना से कहता है। त्रिलोकनाथ वीतरागमार्ग जो अनादि परम्परा से चला आता है, उससे विरुद्ध कहते हैं, उसका विश्वास करनेयोग्य नहीं। और जो कोई उनका विश्वास करता है, वह **'ते नरा दुष भाजनं'** वह दुर्गति का पात्र है। लो, यह तो जरा बात (ली है)। थोड़ा आवे तो सब आवे न।

लो, एक गाथा हुई ५०१। दूसरी गाथा।

पीओसि परम सिद्धं, पीवंतो ममल ज्ञान सुद्धं च।
रहिओ संसार सुभावं, रहिओ सरनि कम्म गलियं च॥५०२॥

अकेली शुद्धता की धुन ही लगी है। इसलिए बारम्बार उसी प्रकार के शब्द

निकल गये हैं, निकल गये हैं। **श्री सिद्ध भगवान ने परमसिद्धस्वरूपी अमृत का पान किया है।** यह '**पीओसि परम सिद्धं**' अमृत। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, मोक्षमार्ग की क्रिया करते-करते परम आनन्द की प्राप्ति हुई। मोक्षमार्ग में भी अन्दर निर्विकल्प का अनुभव करना, पीना, वही मोक्षमार्ग है। अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान निर्मल करके आत्मा के निर्मल सुधारस का अनुभव पीना, उसका नाम भगवान मोक्षमार्ग कहते हैं। यह मोक्षमार्ग चलता है न? मोक्षमार्ग अधिकार है। और उसके फलरूप से सिद्ध भगवान पूर्णानन्द अमृत पीकर हुए हैं।

'**पीवंतो ममल ज्ञान सुद्धं**' अब यह क्या? पान कहा तो कोई भी पानी होगा? कहते हैं कि भाई! सुन तो सही! स्वरूप में अमृतरस पड़ा है, अन्तर स्वभाव में अमृतरस पड़ा है। वह गुणरूप है, शान्तरस, अकषायरस, वीतराग विज्ञानरस। स्वरूप में रस पड़ा है। गुप्त चमत्कार अन्दर पड़ा है। उसकी अन्तर एकाग्रता करने से जो अमृत पीते हैं, उसे निश्चय मोक्षमार्ग भगवान ने कहा है। उसे शुद्ध उपदेश का नाम देते हैं। निर्विकल्प अनुभव के अतिरिक्त, राग के कारण से कोई मोक्षमार्ग बतावे तो वह शुद्ध उपदेश है नहीं, भगवान का उपदेश नहीं। समझ में आया? '**पीवंतो विमल ज्ञान सुद्धं**' **जो कोई आत्मानन्दरूपी अमृत को पीते हैं...** विमल ज्ञान है न? **उनके निर्मल शुद्ध ध्यान की सिद्धि होती है।** लो! आत्मानन्द निर्विकल्प अनुभव को पीते हैं, उन्हें निर्मल शुद्ध ध्यान अर्थात् एकाग्रता, निर्मल पर्याय प्रगट होती है।

'**रहिओ संसार सुभावं,**' देखो, भाषा ली है। यह संसार भी एक विभाव भी एक स्वभाव है। क्या कहा? यह स्वभाव शब्द पड़ा है। यह पुण्य और पाप विकल्प जो उठता है उदयभाव, वह संसार स्वभाव है। जिसे विभाव कहते हैं। वह विभाव भी संसार स्वभाव है। आहाहा! भाई! स्वभाव तो शुद्ध को कहा जाता है। अब सुन तो सही! यह संसार स्वभाव है। जितने पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप की वृत्ति उठती है, वह उदयभाव है, वह संसार स्वभाव है, वह मोक्षस्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? '**संसार सुभावं**' इनकी भाषा से बात की है। परन्तु मूल तो संसार विभाव है, उससे '**रहिओ**' वह संसारभाव, विकारभाव, ऐसे आत्मा का, अमृत का ध्यान करता है,

उसका विकारभाव नाश होता है।

'**रहिओ सरनि कम्म गलियं च**' यह '**रहिओ सरनि**' '**सरनि**' अर्थात् संसार। संसार मार्ग से '**रहिओ**' छूट जाता है और कर्म गलते जाते हैं। यह विकार की पर्याय छूट जाती है और कर्म नाश पाते हैं। दो प्रकार हुए। विकार पर्याय, स्वभाव का निर्मल ध्यान एकाग्र श्रद्धा-ज्ञान से विभाव पर्याय गलती है और कर्म भी (नाश पाते हैं)। विभाव भावकर्म है; कर्म द्रव्यकर्म है। दोनों नाश पाते हैं। समझ में आया? दो गाथायें हुईं।

५०३ (गाथा)।

दिस्टंति तिहुवनग्गं, दिस्टंतो ममल कम्म मुक्कं च।
जिनियं च तिविहि कम्मं, जिनयंतो अनिस्ट कम्मं बंधानं॥५०३॥

अहो! **भव्य जीव! तीन लोक के अग्रभाग में विराजित सिद्ध भगवान।** दो बातें सिद्ध कीं। एक तो सिद्ध भगवान हैं, कहाँ विराजते हैं? तीन लोक के अग्र भाग में। क्षेत्र भी सिद्ध किया। समझ में आया? '**तिहुवनग्गं**' तीन भुवन के अग्र में विराजते हैं। अनन्त सिद्ध विराजते हैं। जहाँ एक सिद्ध हैं, वहाँ अनन्त हैं। अनन्त हैं, वहाँ एक है और एक है, वहाँ अनन्त हैं। कोई मिलते नहीं कोई। 'ज्योत में ज्योत मिलाई' ऐसा नहीं। मूढ लोग ऐसा मानते हैं। प्रत्येक सिद्ध वहाँ (भिन्न-भिन्न विराजते हैं)। मोतीरामजी! भाई! कड़क भाषा है न! क्या करें? लोग ऐसी गड़बड़ कर देते हैं कि मोक्ष—सिद्ध होने के पश्चात् ज्योति में ज्योति मिल गयी, एक सिद्ध में दूसरे सिद्ध मिल गये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं मिलती है। क्या सत्ता का नाश होता है? अनादि-अनन्त '**उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्**' समझ में आया? ऐसा भी एक शब्द है न कहीं? ... ऐई! उत्पाद-व्यय कहीं है न। ध्रुव का कहीं है अवश्य। देखो, इसमें एक दूसरी रीति से बात की है।

नादु न विंदु नकारं, नहि उप्पत्ति षिपति सुधं।
सुधं सुध सहावं, सुधं तियलोय मंत निम्मलयं॥७७५॥

शुद्धनिश्चयनय से जीव में न तो कोई शब्द है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द में कोई

शब्द नहीं। शब्द है ही नहीं उसमें। **न कोई चिह्न है।** चिह्न-बिन्दु। **जिससे इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सके। इसमें न कोई क्रिया है।** हलन-चलन आदि क्रिया आत्मा में नहीं। वह जड़ की क्रिया है, आत्मा की नहीं। **नहीं उत्पत्ति...** उसमें निश्चय से कोई उत्पत्ति नहीं। दूसरी कोई उत्पत्ति नहीं। अपनी निर्मल पर्याय की उत्पत्ति, इसके अतिरिक्त दूसरी उत्पत्ति नहीं। **न कोई व्यय है।** दूसरी चीज़ आकर व्यय हो जाये, ऐसा नहीं। अपनी निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है और पूर्व की निर्मल पर्याय का व्यय और निर्मल पर्याय की उत्पत्ति (होती है)। अन्य निर्मल की उत्पत्ति और पूर्व की निर्मल पर्याय का व्यय। दूसरी कोई पर्याय आकर व्यय और उत्पत्ति हो, ऐसा है नहीं। है देरियाजी!

वह तो ध्रुव शुद्ध है। लो! उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों आ गये। दूसरे उत्पाद-व्यय नहीं, परन्तु अपना उत्पाद-व्यय है। ओर त्रिकाल में तो उत्पाद-व्यय नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। एकरूप ध्रुव में तो उत्पाद-व्यय नहीं। उत्पाद-व्यय तो पर्याय में है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञेय पर्याय के ज्ञान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान-बान... वह तो ज्ञान की अपनी पर्याय उत्पन्न होती है, ज्ञेय की पर्याय नहीं। वह तो ज्ञान की पर्याय अपनी होती है केवलज्ञानरूप, उसकी पर्याय एक समय में होती है और दूसरे समय में जाती है। क्योंकि पर्याय है न, गुण नहीं। गुण सदृश्य कायम रहते हैं। पर्याय एक समय रहती है। पर के कारण से नहीं। ज्ञेय के कारण से नहीं, अपने कारण से। '**उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्**' प्रत्येक द्रव्य का '**उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्**' लक्षण और सत् द्रव्य लक्षण। अपने कारण से उत्पाद-व्यय है, पर के कारण से नहीं। भारी कठिन बात। जगत को परालम्बी बात, परालम्बी बात (रुचती है)।

मुमुक्षु : बहुत मीठी लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठी मानी है अनादि से। मानी है, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : मृदु....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मृदु। भाई कहते हैं थे सवेरे में। देरियाजी कहते थे मृदु

लगती है दूसरे के मीठे वचन। यह कड़क लगते हैं। सुना नहीं। जिनवरदेव वीतराग कहते हैं, अपनी पर्याय में केवलज्ञानादि उत्पन्न हों, वह भी एक समय की पर्याय है। पूर्व की पर्याय का व्यय होता है, ध्रुव में कुछ है नहीं। देखो। ध्रुव शुद्ध।

वह परम शुद्ध स्वरूप है। 'सुधं तियलोय मंत निम्मलयं' निश्चल तीन लोक मात्र असंख्यात प्रदेशी वह सर्व कर्ममल रहित है। कहो, समझ में आया? सर्व को जाननेवाला है। तीन लोक के जितने प्रदेश हैं न, उतने असंख्य प्रदेश अपने आत्मा में है। समझ में आया? तीन लोक है न चौदह ब्रह्माण्ड? उसमें जितने आकाश के प्रदेश हैं न, उतने एक जीव के प्रदेश हैं। एक जीव के इतने असंख्य प्रदेश हैं। सब निर्मल हैं। सिद्ध भगवान तो पूर्ण निर्मल हो गये। पूर्ण निर्मलानन्द। क्या है यह? ज्ञानसमुच्चय। समझ में आया? पूर्ण निर्मल हो गये हैं।

द्रव्य की अपेक्षा वह न उपजता है न विनशता है, वह सदा ही अविनाशी व स्फटिक मणिमय शुद्ध है। इसका स्वभाव रागादि भावों से परम वीतराग है। देखो, लिखा है भाई ने, हों! अन्दर **यह निश्चय से लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है...** शीतलप्रसाद ने। अब यह भी खबर नहीं होती। सिद्ध भगवान असंख्य प्रदेशी क्या? अरिहन्त भगवान असंख्य प्रदेशी क्या? प्रदेश अर्थात् क्या? कहो, सेठ! प्रदेश अर्थात् क्या? कहो तुम। आत्मा है न, वैसे यह एक परमाणु—पॉइन्ट है न यह। अन्तिम टुकड़ा, हों! यह (स्कन्ध) कहीं मूल चीज़ नहीं है। अन्तिम टुकड़ा जितने में रहे, उतनी जगह को प्रदेश कहते हैं। ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेशी चौड़ा है। असंख्य प्रदेशी चौड़ा है। तो यहाँ आचार्य कहते हैं... समझ में आया? ज्ञानसमुच्चयसार में तारणस्वामी कहते हैं कि **'सुधं तियलोय मंत निम्मलयं'** तीन लोक के जितने प्रदेश असंख्यात हैं आकाश के, उतने मेरे असंख्य प्रदेश, सिद्ध के अरिहन्त के इतने हैं। सर्व असंख्य प्रदेश निर्मल हो गये हैं। प्रदेश असंख्य हैं, गुण अनन्त हैं। एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण हैं। ऐसा अनन्त व्यापक है। सोने की चैन नहीं होती? साँकली को क्या कहते हैं? जंजीर। जंजीर नहीं। चैन। चैन में तो मकोड़े होते हैं न। मकोडा कहते हैं? क्या कहते हैं? कड़ी-कड़ी। एक-एक कड़ी तो ऐसे-ऐसे लगी हुई है। ऐसा यहाँ नहीं। यहाँ तो एक... एक... एक... एक... एक... एक... प्रदेश है। तो कड़ी को प्रदेश कहना, सांकल को आत्मा कहना

और उसमें जो सोना है, उसको गुण कहना। समझ में आया? भगवान आत्मा... साँकली, साँकली कहते हैं न? क्या कहा? साँकली कहते हैं। यह दो-चार-पाँच हार डालते हैं न। साँकली, वह आत्मा, उसमें जो कड़ी, वे उसके प्रदेश और उसमें पीलापन आदि है, वह उसके गुण। इसी प्रकार आत्मा साँकली समान असंख्यप्रदेशी, प्रत्येक प्रदेश में अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि असंख्य प्रदेश में भरे हुए हैं। समझ में आया? भगवान के धर्म में जैन में जन्मे, जैन को खबर नहीं। अब इसमें सच्चे-खोटे की परीक्षा कहाँ से हो? कि यह सत्य है, यह झूठ है, यह सत्य है। समझ में आया? '**सुधं तियलोय मंत निम्मलयं**' असंख्य प्रदेश भगवान के ध्रुव शुद्ध हो गये हैं सब। उसमें दृष्टान्त दिया है। कहो, समझ में आया?

दिस्टंति तिहुवनग्गं, दिस्टंतो ममल कम्म मुक्कं च।
जिनियं च तिविहि कम्मं, जिनयंतो अनिस्ट कम्मं बंधानं॥५०३॥

जो भव्य जीव तीन लोक के अग्रभाग में विराजित सिद्ध भगवान का स्वरूप मनन करते हैं और उस ही स्वरूप को देखने से कर्म छूट जाते हैं। वह सिद्धस्वरूप अपना, हों! सिद्ध का नहीं, अपना। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा शुद्धस्वरूप सिद्ध समान असंख्यप्रदेशी अत्यन्त अनन्त गुण का धाम पूर्ण निर्मल है, ऐसा देखते हैं, उसके कर्म छूट जाते हैं।

'**जिनियं च तिविहि कम्मं,**' जिसने जीते हैं, जिन अर्थात् जीते हैं, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म जीते हैं। भगवान ने तो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म हैं। भावकर्म का विकल्प जो दया, दान, वह भावकर्म है, वह भगवान के पास नहीं है। यहाँ भी अपने स्वभाव में नहीं है। अपने स्वभाव की दृष्टि करने में वह भाग है नहीं। '**जिनयंतो अनिस्ट कम्मं**' और अनिष्ट कर्म का बन्ध नहीं होता। समझ में आया? **कर्म को जीता जाता है।** दो बातें लीं। एक तो नये नोकर्म जीते जाते हैं और अनिष्ट कर्म का बन्ध नहीं होता। जीते जाते हैं अर्थात् निर्जरा होती हे और नये कर्म का बन्ध नहीं होता। संवर होता है। जो ऐसे सिद्धस्वभाव सन्मुख की दृष्टि करता है, उसके पुराने कर्म झरते हैं, नये कर्म आते नहीं। संवर-निर्जरा दो ली है। समझ में आया? पश्चात् जरा लिया। बस, समय हो गया है।

सिद्ध भगवान का ध्यान करने से संवर भी होता और निर्जरा भी होती है। देखो, लिखा है भाई ने। **मोक्ष का मार्ग शुद्ध स्वरूप का...** देखो, संवर और निर्जरा, वह मोक्ष का मार्ग है। जो अन्तर में शुद्ध स्वभाव पुण्य-पाप के राग से रहित श्रद्धा, ज्ञान और रमणता से नये कर्म बँधते नहीं, पुराने कर्म झरते हैं। नये नहीं बँधते, वह संवर; पुराने झरते हैं, वह निर्जरा। इसका नाम भगवान यहाँ मोक्षमार्ग है न भाई! मोक्षमार्ग। इससे संवर, निर्जरा और मोक्ष (लिये हैं)। सात तत्त्व में संवर, निर्जरा, वह मोक्षमार्ग है। आस्रव और बन्ध संसारमार्ग है। सात तत्त्व के अन्दर, जीव और अजीव दो द्रव्य हैं। समझ में आया? और मोक्ष तो पर्याय है। संवर-निर्जरा की फलरूप पर्याय है। इन सातों तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा, तत्त्वार्थश्रद्धा निश्चय अनुभवसहित, हों! उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं और उससे अनिष्ट कर्म का बन्ध नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ४, शनिवार, दिनांक - २१-०९-१९६३
गाथा-५०८-५०९, ज्ञानसमुच्चयसार- ३५९-४२७,
श्रावकाचार-३०२, ३०५, ३१४ प्रवचन-६

यह उपदेशशुद्धसार, तारणस्वामी रचित। उसमें उपदेश शुद्ध कैसा होना चाहिए मुख्यरूप से यह बात चलती है। एक ५०८ गाथा। ५०७ कल आ गयी।

पोषंतु न्यान विन्यानं, पोषंति विन्यान कम्म षिपनं च।
सिद्धंतु कम्म षिपनं, सिद्धंति कम्म तिविहि मुक्कं च॥५०८॥

शुद्ध सर्वज्ञ वीतराग का उपदेश कैसा होना चाहिए? कि '**पोषंतु न्यान विन्यानं,**' भेदविज्ञान का पोषण करना चाहिए। पोषण अर्थात् पालना। भेदज्ञान में दो चीज़ें आयी। रागादि है, विकल्प है, कर्म है, निमित्त है और अपने शुद्ध स्वभाव से भिन्न है। ऐसा भेदविज्ञान का पालन करना चाहिए। राग आता है, मुनि को भी राग आता है। समझ में आया? छठवें गुणस्थान में सन्त, मुनि भावलिंगी परमेश्वरपद में आये, उन्हें भी व्यवहार का विकल्प पंच महाव्रत का, अट्ठाईस मूलगुण का, भगवान की भक्ति का, स्मरण का विकल्प अर्थात् राग उन्हें भी आता है। परन्तु वह आता है, उसका बराबर ज्ञान करना और उसका भेदज्ञान करके अन्तर में लीन होना। समझ में आया?

'**पोषंतु न्यान विन्यानं,**' भेदविज्ञान का पोषण करना। तो भेद में दो चीज़ आ गयी। एक में भेद नहीं होता। समझ में आया? दो चीज़ हो तो भेदज्ञान होता है। तो सम्यग्दृष्टि को भी चौथे गुणस्थान में भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम, ऐसा शुभराग आता है। पंचम गुणस्थान में भी बारह व्रत का, अव्रत त्याग का उसे शुभविकल्प होता है। मुनि को भी, भावलिंगी सन्त को भी अट्ठाईस मूलगुण, गुरुवन्दन, शास्त्रश्रवण, मनन आता है। अभी आयेगा श्रवण में। तो वह सब विकल्प है। विकल्प आता है, परन्तु अन्तर में स्वभाव-सन्मुख राग से भिन्न होकर जितना अन्दर एकाकार हुआ, वही एक मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि भेदविज्ञान का पोषण। पोषण का अर्थ पालन अर्थात् पोषण करना, पोषना। पोषण समझे या नहीं? भूख लगे तो आहार का पेट में पोषण होता है या

नहीं? इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पुण्य-पाप के विकल्प उठने पर भी स्वभाव उससे भिन्न है, ऐसा अन्तर में ज्ञान-आनन्द का पोषण अर्थात् पालन करना। समझ में आया? और **'पोषंति विन्यान कम्म षिपनं च' भेदविज्ञान सेवन से... 'कम्म षिपनं'** नाश पाते हैं। बीच में राग आता अवश्य है। समझ में आया? मुनि को भी आता है। तीर्थंकर हो जब तक छद्मस्थ मुनिपद में हों, जब छठवें-सातवें (गुणस्थान) में विराजमान हों तो उनको भी छठवें गुणस्थान में राग आता है। शुभराग। परन्तु कहते हैं कि उस राग का ज्ञान करना। है, इतना ज्ञान करना, परन्तु पोषण तो राग से भिन्न अपने शुद्ध स्वभाव सन्मुख का पोषण करना। समझ में आया? राग नहीं आता, ऐसा माने तो एकान्त मिथ्यादृष्टि हो जाता है और राग से अपने धर्म की अन्तर में पुष्टि होती है, ऐसा माने तो भी दृष्टि मिथ्या हो जाती है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि **'पोषंति विन्यान कम्म षिपनं च। सिद्धंतु कम्म षिपनं,'** क्या कहते हैं? कर्म का क्षय हो, ऐसा साधन करो। साधन। वह अन्तर स्वरूप स्वभाव शुद्ध, उसमें एक करण नाम का गुण पड़ा है आत्मा में, करण। जैसे कर्ता, कर्म, करण आदि षट्कारक की शक्ति पड़ी है आत्मा में शुद्ध त्रिकाल, तो उसके करण नाम के गुण द्वारा साधन करना। स्वभाव का साधन करना। राग आता है, उसका साधन दृष्टि में से छोड़ देना। है, इतना ज्ञान करना, परन्तु स्वभाव के अन्तर्मुख होकर अपने शुद्ध स्वरूप का कर्ता, कार्य, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—ऐसे षट्कारक का शुद्ध स्वभाव पड़ा है तो द्रव्य के ऊपर लक्ष्य करके उसके स्वभाव का साधन करना। **इससे तीनों ही प्रकार कर्म छूट जाते हैं।** तीनों प्रकार के कौन से? जड़ के कारण से जड़ कर्म छूट जाते हैं। शरीर छूट जाता है शरीर के कारण से और राग छूट जाता है, उस काल के कारण से। वह काल राग छूटने का था। स्वभाव-सन्मुख होता है, तब राग छूट जाता है, यह भावकर्म नाश हुआ, जड़ कर्म छूटता है, इसका नाम द्रव्यकर्म का नाश हुआ, शरीर छूटता है, इसका नाम नोकर्म नाश हुए।

मुमुक्षु : नोकर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : नोकर्म—यह शरीर नोकर्म वाणी आदि। जरा सूक्ष्म बात है

अन्दर समझने में। समझ में आया? देखो, यहाँ लिखा है। इसमें है, देखो भाई! गाथा २९९। इसमें २९९ गाथा। इसमें है। उसमें दो प्रकार का चारित्र है, देखो। २९९? २९८ पृष्ठ? २९९ गाथा है। १९३ पृष्ठ। देखो, २९९।

चिदानंद संदिट्ठं, दंसन दंसेइ न्यान सहकारं।
चरनं दुविहि संजोयं, न्यान सहावेन कम्म संषिपनं॥२९९॥

यह बात दूसरी है, हों! यह बात पहले अपने चली थी कि चरण दो प्रकार के—सम्यक् चरण और चारित्र चरण। यह दो प्रकार अलग, ये दो प्रकार अलग।

मुमुक्षु : वह .... चारित्र, यह तो अकेला चारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ तो अकेले चारित्र के दो प्रकार हैं। पहले अपने चला था श्रावकाचार में से। पहले आ गया सम्यक् चरणं, चारित्र चरणं। वह भी दो प्रकार के हैं। यह दो प्रकार के हैं, उसमें भी दो प्रकार हैं, ऐसा मैं कहता हूँ। क्या कहते हैं? सम्यक्चरणं और चारित्रचरणं यह दो प्रकार हुए। तो समकित का चरण शुद्ध चैतन्यमूर्ति अन्तर, उसकी निर्विकल्प प्रतीति करके निःशंक आदि आठ गुण के... २९९ गाथा है न! गाथा २९९, पृष्ठ १९३। समझ में आया? गजब बात! उपदेशसार। उपदेशसार की २९९ है।

क्या कहते हैं? कि चरण दो प्रकार के—एक सम्यग्दर्शन चरण, एक चारित्र चरण। उसकी यहाँ बात नहीं, उसकी बात नहीं। यह बात श्रावकाचार में गयी। और यह बात अपने अष्टपाहुड़ में चलती है। कुन्दकुन्दाचार्य में। उसका सब अनुकरण करके लिया है। अष्टपाहुड़ में दो प्रकार के चरण शीलपाहुड़ में आये हैं। शीलपाहुड़ है, उसमें दो प्रकार के चरण लिये हैं। एक सम्यक् चरण। शुद्ध चिदानन्द आत्मा अनन्तगुण के पिण्डरूप एकरस, उसकी अन्तर दृष्टि करके निःशंक आदि का पालन। निश्चय से निःशंक आदि का पालन होना, वह सम्यक् चरण, निश्चय आचरण है और साथ में निःशंक आदि आठ प्रकार के विकल्प उठते हैं, वह व्यवहार समकित चरण चारित्र है। समझ में आया?

निःशंक आदि के आठ बोल हैं, वे दो प्रकार के हैं समकित चरण में भी। एक

अपने शुद्ध स्वरूप में अन्तर निर्विकल्प नि:शंक, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सा,... आठ। यह निश्चय में स्वरूप सन्मुख की अरागी परिणति की... वह भी गुण नहीं। नि:शंक आदि आठ आचार, वह गुण नहीं, वह है तो पर्याय। सम्यग्दर्शन भी पर्याय और आठ गुण भी उसकी पर्याय आचरण में है। यह निश्चय आचरण। और उस समय सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा। समझ में आया ? ऐसे नौ तत्त्व की भेदवाली, विकल्पवाली श्रद्धा, ऐसा जो विकल्प—राग उठता है, वह समकित का व्यवहार आचरण है। वह व्यवहार आचरण है। वह व्यवहार आचरण बन्ध का कारण है। निश्चय आचरण मुक्ति का कारण है। दोनों आये बिना नहीं रहते। आहाहा! क्षायिक समकित हो भगवान... श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती हुए तो उसमें नि:शंक आदि की निर्मल पर्याय, वह तो निर्विकल्प निर्जरा का कारण है। और साथ में सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की पहिचान करके जो श्रद्धा होती है, भक्ति होती है, गुणस्मरण होता है, वस्तु स्तवन का विकल्प उठता है, वस्तु स्तवन—अपनी वस्तु कैसी है, उसका स्तवन गुणग्राम का विकल्प उठता है, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन का आचरण कहा जाता है। तो सम्यग्दर्शन के आचरण दो प्रकार के हैं। आहाहा! समझ में आया ? एक आचरण बन्ध का कारण है। आये बिना रहता नहीं। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक आये बिना रहता नहीं। एक आचरण मुक्ति संवर-निर्जरा का कारण है।

इस प्रकार चरणचारित्र के दो प्रकार हैं। वे यहाँ कहे। देखो, वहाँ चरण आचरण कहा था। यहाँ कहते हैं, देखो! कि **चिदानन्द स्वभाव को भले प्रकार देखना चाहिए। 'चिदानंद संदिट्ठं'** और **'दंसेइ न्यान सहकारं' चिदानन्द ज्ञान की सहायता से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।** अन्तर सम्यग्ज्ञान द्वारा अन्तर निर्मल सम्यग्दर्शन होता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन तो निर्विकल्प पर्याय है और ज्ञान सविकल्प पर्याय है। तो ज्ञान से अन्तर में जानकर अन्तर में प्रतीति होती है। सविकल्प का अर्थ राग नहीं। सविकल्प ज्ञान का अर्थ राग नहीं। वह ज्ञान का स्वभाव ही सविकल्प है। केवलज्ञान भी सविकल्प है। सविकल्प का अर्थ स्वपरप्रकाशक पर्याय को सविकल्प कहते हैं। और दूसरी अनन्तगुण की निर्विकल्प पर्याय को निर्विकल्प अर्थात् सत्ता रखनेवाली दशा कहते हैं। वह गुण अपने को नहीं जानते और वह गुण दूसरे दर्शन आदि ज्ञान को नहीं जानते। इस अपेक्षा से उसे

निर्विकल्प कहा जाता है। और ज्ञान अपने को जानता है, ज्ञान आनन्द को जानता है, ज्ञान चारित्र को जानता है, ज्ञान द्रव्य-पर्याय सर्व को जानता है, इस अपेक्षा से ज्ञान की पर्याय को राग बिना सविकल्प पर्याय का स्वभाव कहा गया है। गजब बात, भाई! समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं कि **ज्ञान की सहायता से...** शब्द पड़ा है न यह '**न्यान सहकारं**' है न? **सम्यक् प्रगट होता है। तब सम्यक् भाव ऐसा ही श्रद्धान करना। तब ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान हो जाता है, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान की प्रगटता पर...** अब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने के पश्चात् चरण प्रगट होता है। देरियाजी! सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान बिना चारित्र-फारित्र होता नहीं। रात्रि भोजन का त्याग और यह सामायिक और फामायिक सब मिथ्या। समझ में आया? देखो, यह लिया न पहले? '**चिदानंद संदिट्ठं, दंसन दंसेइ न्यान सहकारं।**' दो बोल पहले सिद्ध किये।

अब तीसरा बोल सिद्ध करते हैं। है तो दोनों पर्याय। अब तीसरी यह चारित्र पर्याय के दो प्रकार। '**चरनं दुविहि संजोयं**' देखो, भाषा। चारित्र के दो प्रकार का संयोग होना, ऐसा लिखा है। अथवा होता है, उसे संयोग कहते हैं। चारित्र के दो प्रकार कौनसे? यहाँ व्यवहार और निश्चय चारित्र। निश्चय चारित्र उसे कहते हैं कि पहले कहा दर्शन और ज्ञान अनुभव सम्यक् प्रतीति अनुभव हुआ। सम्यक् आत्मा का ज्ञान हुआ, हों! पश्चात् स्वरूप में रमणता करना। निर्विकल्प रमणता, चारित्र रमणता। चरना, जमना, लीन होना। स्वरूप में जमना। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना, उसका नाम निश्चय चारित्र कहा गया है। सेठी! और साथ में व्यवहारचारित्र होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : तब बाह्य चारित्र काम का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य चारित्र जाननेयोग्य काम का है इतना। निमित्त पड़ता है। जाना हुआ प्रयोजनवान। उसमें इतनी स्पष्टता नहीं। यह समयसार में स्पष्ट है। १२वीं गाथा में कि निश्चय अपने स्वरूप का भान हुआ, पश्चात् राग हुआ, वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाना हुआ प्रयोजवान है। आदरणीय नहीं, निषेध नहीं कि है ही नहीं, ऐसा नहीं। यह तो १२वीं गाथा में आया, ऐसा यहाँ नहीं है। यहाँ तो साधारण बात... साधारण बात की है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि '**चरनं दुविहि संजोयं**' यह अधिकार समझ में आया ? किसका चलता है ? यह उपदेश है न ? यह फिर आगे उसमें आयेगा। चिदानन्दस्वभाव चलता है। चिदानन्दस्वभाव चलता है। तो उस चिदानन्दस्वभाव में चारित्र के दो प्रकार आते हैं। समझ में आया ? एक व्यवहार और निश्चय। संयोग शब्द पड़ा है। दोनों साथ रहते हैं। भाई! बात तो ऐसी है। संयोग का अर्थ मिलाना, वह तो ठीक, यह तो जरा अर्थ किया है इसमें। परन्तु वास्तव में निश्चय और व्यवहार संयोग अर्थात् साथ रहते हैं। व्यवहार केवली को नहीं होता, व्यवहार मिथ्यादृष्टि को नहीं होता। साधक को होता है। अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान अनुभव हुआ, उसे निश्चय और व्यवहार दोनों होते हैं। भगवान सर्वज्ञ को अकेला निश्चय प्रमाणज्ञान हो गया, उन्हें व्यवहार-फ्यवहार है नहीं। उनको नहीं है। दूसरे मानते हैं। भगवान को जितनी अशुद्धता है, वह भी व्यवहारनय का विषय है। दूसरे श्रुतज्ञानी जानते हैं। उन्हें व्यवहार-फ्यवहार है नहीं। और नीचे जब तक मिथ्यादृष्टि है, आत्मा निर्विकल्प क्या चीज़ है सर्वज्ञ ने कही, ऐसा दृष्टि में आया नहीं, अनुभव में आया नहीं तो उसे जितने दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, यह रात्रिभोजन का त्याग सब मिथ्या... मिथ्या... मिथ्या है। समझ में आया ? यह कोई व्यवहार-फ्यवहार है नहीं। व्यवहार कब आता है ? कि '**चिदानंद संदिट्ठं, दंसन दंसेइ न्यान सहकारं।**' अपने ज्ञानस्वभाव से अन्तर्मुख होकर अपने स्वरूप का अनुभव किया और साथ में प्रतीति हुई, तब उसे चारित्र होता है। यहाँ तक तो चौथे गुणस्थान की बात हुई। पहले पद में चौथे गुणस्थान की बात हुई।

अब पाँचवें और छठवें की बात चलती है। समझ में आया ? जब सम्यग्दर्शनपूर्वक पाँचवाँ गुणस्थान श्रावक को—सच्चे भावश्रावक को आता है तो उसका चरण दो प्रकार का हो जाता है। एक, जितने अंश में स्वरूप में लीनता हुई, शान्ति हुई, दूसरी कषाय (चौकड़ी) का नाश होकर स्थिरता हुई, वह निश्चय चारित्र पाँचवें गुणस्थान में। और जितने बारह व्रत, दूसरों को दुःख न दूँ, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य ऐसा विकल्प आता है, उसे व्यवहारचारित्र कहा जाता है। पाँचवें गुणस्थान में दो प्रकार के चारित्र। समझ में आया ? निश्चय और व्यवहार। संयोग शब्द पड़ा है, इसलिए हमारी दृष्टि में तो साथ में है, ऐसा अर्थ है। मिलाना-फिलाना ऐसा नहीं। क्योंकि राग मिला सकता है,

ऐसा है नहीं। कौन मिलावे? राग आता अवश्य है, परन्तु राग मैं मिलाता हूँ और राग मैं करता हूँ—ऐसा सम्यग्दृष्टि की दृष्टि में नहीं है। परन्तु राग आता अवश्य है। पाँचवें गुणस्थान में बारह व्रत का राग, शुभराग, विकल्प... समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विनय, गुरु को वन्दन, गुरु का स्मरण, देव को वन्दन, णमो अरिहंताणं ऐसा स्मरण, यह सब शुभराग है, यह सब विकल्प है। उसे व्यवहारचारित्र में गिनने में आया है। वह व्यवहारचारित्र पुण्यबन्ध का कारण है। आये बिना रहता नहीं। और जितनी स्वभाव सन्मुख एकाग्रता हुई है, वह निश्चय चारित्र संवर और निर्जरा है। ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें कुछ झट समझ में आवे, ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : झट दो और दो = चार जैसा समझ में आवे, ऐसा है। देरियाजी! अब देरियाजी तो यहाँ महीने से पड़े हैं। झट समझ में नहीं आता, ऐसा कहते हैं। ऐई! यह सेठिया बचाव करते हैं, यह बड़े सेठ बचाव करते हैं। परन्तु भाई! भगवान के समवसरण में बालक भी समझ जाता है, पशु भी समझ जाता है। पहले नहीं समझे हुए ही समझते हैं न! अनादि से समझे नहीं, उन्हें तो यहाँ समझाते हैं। तीर्थंकर स्वयं भी पहले नहीं समझे थे, तब वे भी निगोद में और चार गति में भटके थे, उनका आत्मा भी। आहाहा!

सयाजीराव का दृष्टान्त दिया था न, भाई! वह सयाजीराव नहीं? कैसे? भाई! मलावराव। मलावराव को गद्दी से सरकार ने उठा दिया। जरा ऐसा कोई लक्षण में अन्तर था। गद्दी से उठा दिया मलावराव को। तीन करोड़ की आमदनी। पहले तीन करोड़ की उपज, हों! २५, ५० वर्ष पहले। बड़ोदरा। पश्चात् रानी कहे, अपने पुत्र नहीं, क्या करना? फिर उसके कुटुम्ब के दो पुत्र थे। दो या तीन। वे सब बकरियाँ चराते थे। बकरा समझते हो? भेड़ चराते थे। भैंसा कहो। ढोर चराते थे, लो न। वहाँ सिपाही गये। रानी साथ में। मलावराव की रानी। मलावराव को तो सरकार पकड़कर ले गयी थी। रानी गयी। बुलाओ। जाओ अपने परिवारी हैं, उन्हें बुलाओ। वे तुरन्त आये कि रानीसाहेब बुलाती हैं। चलो। उसमें बड़े भाई को पूछा क्यों आये हो भाई? रानी ने पूछा। वह तो

महाबुद्धिवाली हो न? वह भी परीक्षा तो करे या नहीं? कि तुम्हारे सिपाही आये थे तो हमे लाये हैं। छोटे को पूछा, यह सयाजीराव बैठे थे गद्दी पर, उनसे पूछा, क्यों आये हो भाई? राज लेने आया हूँ। ओहो! रानी कहे, जाओ इसे चढ़ा दो। चढ़ा दो, राज का मालिक यह है। वह पुण्य था न पुण्य अन्दर में। वह अन्दर में से पुण्य बोलता था।

यहाँ पवित्रता होने की योग्यतावाला बोलता है कि मैं बराबर समझता हूँ। मैं केवलज्ञान का राज लेने आया हूँ। समझ में आया? पश्चात् सयाजीराव को गद्दी पर बैठाया। अन्दर में से उसे जोर आया है। उसका पुण्य दिखता है। रानी है न, उसे दिमाग बहुत। क्यों आये हो भाई? राज लेने आये हैं, क्यों आये क्या? तुम्हारे लोग हमको बुलाने आये थे, क्या मुफ्त बुलाने आये थे? शोभालालजी! रानी ने हुकम किया कि जाओ इसे पढ़ाओ और राजगद्दी के मालिक यह है। तीन करोड़ की उपज का राजा यह है। जाओ।

इसी प्रकार यहाँ हमारे आत्मा में राज लेना है। केवलज्ञान लेना है। हम समझ सकते हैं। समझ नहीं सकते? जाओ ढोर चराओ। देरियाजी! बराबर हम केवलज्ञान लेने तैयार हैं। हमारा आत्मा ही केवलज्ञान से भरपूर है। आया न भाई, नहीं गुप्त? है न कहीं? ऐई! गुप्त का कहाँ है? यह देखो दो है न दो? एक के बाद दो। ममलपाहुड़ तीसरा भाग।

.....

..... है? दूसरी गाथा। पहले नहीं दूसरी। **जब परमात्मा के...** देखो। २२९ पृष्ठ और दूसरी गाथा।

मुमुक्षु : गाथा २२७....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस यह। क्या कहते हैं, देखो, कि **जब परमात्म स्वभाव से मेल किया जाता है।** देखो मिलान किया है कि मैं परमात्मा होने के योग्य हूँ। समझ में आया? देखो! मिलान-मिलान। मिलान हो गया, यह राज में मिलान हो गया। देरियाजी! इसी प्रकार मैं आत्मा परमात्मस्वरूप हूँ। मेरा शुद्ध चिदानन्द अखण्ड आनन्द है। मैंने उसमें से प्रगट किया। देखो, क्या कहते हैं? **मेल किया जाता है। तब अपना स्वभाव**

भीतर से खींचकर... देखो, ... अन्दर में से खींचकर पर्याय में आता है। समझ में आया? यह राजकुमार को बुलाया कि यहाँ आओ। खींचकर लाये। किसलिए आये हो? राज लेने आया हूँ। इसी प्रकार अपने आत्मा में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञपद पड़ा है अन्दर। वह सर्वज्ञस्वभाव कहीं है, भाई, हों! सर्वज्ञस्वभाव अपने पहले कहीं आ गया है।

मुमुक्षु : पहले बात हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पहले बात हुई। और उसमें भी कहीं दूसरी जगह आती है, सर्वज्ञ समान। यह ज्ञानसमुच्चयसार में है। यह बाद में निकालना। यहाँ क्या कहते हैं?

जिनेन्द्र का रूप खींचकर प्रगट होता जाता है। आहाहा! जैसा परमात्मा अपना स्वभाव है, ऐसी दृष्टि करके, खींचकर शक्ति में से पर्याय में परमात्मा का जन्म होता है। बाहर से परमात्मा आता है कहीं? कोई राग में से आता है? राग होता है। यह तो कहते हैं न! चारित्र दो प्रकार के होते हैं, राग होता है। भूमिका प्रमाण राग आये बिना रहता नहीं। परन्तु कहाँ से आता है परमात्मा? वह राग में से आता है? एक समय की पर्याय है, उसमें से आता है?

मुमुक्षु : त्रिकाल भण्डार भरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भण्डार भरा है। समझ में आया?

.... **और होते ही जिनेन्द्ररूप हो जाता है।** प्रतीति तो ला, श्रद्धा तो ला कि अन्दर में आत्मा मैं ही परमात्मा हूँ। ऐई! अचलजी! यहाँ तो (ऐसा कहते हैं), हमको समझ में नहीं आता, हम पकड़ नहीं सकते। भिखारी हो? रंक हो? जाओ ढोर चराओ। यहाँ कहते हैं ... **मोक्ष जानेवाले सिद्ध भाव में रमण करना जिनेन्द्र की जय हो।** पहले है न। जय-जय। जय हो! जय हो! हमारा स्वभाव अन्दर में पड़ा है। मैं एकाकार दृष्टि करके, लीनता करके शक्ति में से खींचकर लाना है। हमारा परमात्मा हमारे पास है, बाहर है नहीं।

मुमुक्षु : .... जागृत करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जागृत करते हैं। रंक को ऐं...ऐं... ऐसा करे... यह दृष्टान्त नहीं

दिया था पहले ? पहले दृष्टान्त दिया था, भाई ! नहीं उस समय ? देरियाजी ! जहाज का। एक जहाज था। जहाज-जहाज। २०० जहाज थे। तो मुम्बई से चले थे। तो चलते-चलते कोई गाँव आ गया। कोई भावनगर या कोई ऐसा था। बहुत पहले की बात है। तो उसमें पानी का क्या कहलाता है ? तूफान हो गया तो १९८ जहाज डूब गये। वहाण समझते हो न ? जहाज। दो जहाज (बचे)। उस सेठ को खबर पड़ी। शोभालालजी को खबर पड़ी कि हमारा जहाज है। १९८ गये और दो रहे। जाओ हमारे जहाज हैं वे दो। कहे, हमारा जाता नहीं। हमारा पुण्य है, हमको खबर है। दूसरों के १९८ जहाज जाये, हमारा नहीं जायेगा। वहाँ गये तो उनके ही दो जहाज थे। सेठ ! वह कहे कि १९८ डूब गये। डूबे दूसरे के, हमारा नहीं डूबता। जाओ, देखो वहाँ। लोग गये तो उनके ही दो जहाज थे। समझ में आया ? अपने पुण्य का भरोसा था कि हमारा पुण्य अभी कम नहीं हुआ। हमारा पुण्य है। वह तो कुछ पवित्रता का, पुरुषार्थ का कुछ काम नहीं। वह कोई बाहर की चीज़ पुरुषार्थ से नहीं हुई। वह तो पूर्व का पुण्य पड़ा हो तो उसका भरोसा हो तो पुण्य के कारण से मिले, पुण्य न हो तो न मिले। उसमें आत्मा का पुरुषार्थ क्या काम करे ? कुछ काम नहीं करता। सेठी ! हमारे दोनों जहाज तिरते हैं।

इसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी अपने स्वभाव... सब डूब गये... सब डूब गये। परन्तु सब डूब गये किन्तु हम तो तिरनेवाले हैं। दुनिया को डूबने दो। हम तो केवलज्ञान लेनेवाले हैं। सेठी ! देखो, क्या कहते हैं ? यह तो पहले से ही ऐसा कहते हैं कि हमको यह सम्यग्दर्शन महँगा पड़ता है, दुर्लभ लगता है, कठिन बात है। निश्चय-व्यवहार दो नय की कठिन बात है। दो नय कठिन नहीं। वह तुझे समझ में आये ऐसी है। यह आचार्य तुझे क्या समझाते हैं ? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हम किसे समझाते हैं ? जड़ को समझाते हैं ? चेतन को समझाते हैं। चैतन्य अन्दर पड़ा है। ज्ञानमूर्ति पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड, उससे कहते हैं कि तू जागृत हो। अरे... ! हम नहीं। अरे कायर ! अभव्य कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य। यह अपने भी आ गया। उनका ही अनुकरण किया है तारणस्वामी ने। अभव्य अपने आ गया है। कहीं आया है न ? पहले आ गया। अभव्य हो ? कहीं आ गया। दूसरे में आया। अभव्य अर्थात् वह अभव्य नहीं, परन्तु हमारी बात तुझे सत्य कहते हैं। निश्चय-व्यवहार की बात समझता नहीं, जानता नहीं। क्या नालायक है ?

पहले आ गया अपने। आठ व्याख्यान में आ गया अभव्य। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं कि जय जय... हम तो जिनेन्द्र परमात्मा की पर्याय पाने का पुरुषार्थ करते हैं। जय जय होगा। पश्चात् यह सर्वज्ञ है या नहीं? कहाँ? ज्ञानसमुच्चयसार। देखो, २३० पृष्ठ है। ज्ञानसमुच्चयसार। यह तो है तुम्हारे पास।

उवंकारं ह्रियंकारं, श्रियंकारं ति अर्थ ऊर्ध सुद्धं च।
पंचस्थान संजुत्तं, सम्मत्तं सुध समय सर्वन्यं॥४२७॥

ॐ तो भगवान की वाणी है। ॐ। जब सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण केवलज्ञान प्राप्त करते हैं न, तब उनकी वाणी ऐसी नहीं निकलती। अपने निकलती है, वह तो अभी राग है न, तो भेदवाली वाणी निकलती है। वीतराग जहाँ अन्तर सर्वज्ञ हुए (तो उनको) एकाक्षरी वाणी ॐ ध्वनि उठती है। समझ में आया? भगवान के मुख में से ॐ ध्वनि उठती है। एकाक्षरी। क्यों? कि वे अरागी हो गये। अकषाय स्वभाव हुआ तो भेद नहीं। वाणी भी निरक्षरी अभेद निकलती है। यहाँ राग है तो वाणी भेदवाली निकलती है। अनेक अक्षरवाली। समझ में आया? भगवान की वाणी यह पहले कहा, देखो, **'उवंकारं' ॐ ह्रीं श्रीं इन तीन पदों का ध्यान करते हुए...** भगवान के ॐ। ॐ के दो प्रकार हैं। वाणी एक ॐ है। ॐ.... विकल्प उठता है वह। और एक ॐ आत्मा के स्वभाव को भी ॐ कहा जाता है।

'ह्रियंकारं, श्रियंकारं' यह तीन मन्त्र की बात है। **'पंचस्थान संजुत्तं' पाँच परमेष्ठी का स्वरूप विचारते हुए...** देखो, **'सम्मत्तं सुध समय सर्वन्यं।' शुद्ध आत्मा को सर्वज्ञ समान ध्याना यही सम्यग्दर्शन का आचरण है।** है भाई? है इसमें? ४२७ नहीं आया? अन्तिम शब्द है, देखो, **'सुध समय सर्वन्यं।'** यह तो पाठ है न उसमें? शुद्ध समय अर्थात् आत्मा। शुद्ध समय अर्थात् आत्मा, शुद्ध समय अर्थात् आत्मा। शुद्ध आत्मा को **'सर्वन्यं सम्मत्तं'** सर्वज्ञ समान ध्यान करना चाहिए। मैं रागी हूँ, मैं शरीरी हूँ, मैं कर्मी हूँ, मैं अल्पज्ञानी हूँ, ऐसा नहीं। समझ में आया? है या नहीं भाई? वाँचे नहीं, विचार करे नहीं। पैसे में रहे और वाँचा नहीं अभी तक।

मुमुक्षु : वाँचे तो समझ में आता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, समझ में नहीं आता। देरियाजी! वकालत की। बात तो ऐसी है।

क्या कहा? ओहो! देखो शब्द! '**सम्मत्तं सुध समय सर्वन्यं।**' यह पंच परमेष्ठी का स्वरूप चिन्तन करते-करते अपना शुद्ध स्वरूप '**समय सर्वन्यं सम्मत्तं**' अपना आत्मा ही सर्वज्ञस्वरूप त्रिकाल स्थित है गर्भ में। सर्वज्ञ स्थित हैं तो पर्याय में सर्वज्ञ का गर्भ में जन्म होता है। समझ में आया? यह गर्भ अवतरित हुआ, ऐसा आता है न भाई! महेन्द्रभाई! यह गर्भ अवतरित आता है। ममलपाहुड़ में आता है। सब गाथा याद नहीं। गर्भ अवतरित हुआ। था तो अवतार हुआ है। अपने आत्मा में... एक-एक आत्मा, हों! ऐसे अनन्त आत्मा। अनन्त आत्मा, उससे अनन्तगुणे परमाणु, उससे तीन काल का समय अनन्त गुणा। ऐसा भगवान ने केवलज्ञान में देखा। समझ में आया? ऐसे एक-एक आत्मा में सर्वज्ञ समान मैं हूँ, ऐसा ध्यान करना, ऐसी श्रद्धा अन्तर्मुख होकर करना और **ध्यान ही सम्यग्दर्शन का आचरण है।** देखो, समझ में आया?

क्या कहते हैं यहाँ? कौनसा अधिकार आया? अब मुनि का दो प्रकार का चारित्र रह गया है। '**चरनं दुविहि संजोयं**' दो का संयोग होता है। जहाँ निश्चय होता है, वहाँ व्यवहार होता ही है। जहाँ व्यवहार हो, वहाँ निश्चय हो तो व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? यह श्रीमद् में कहते हैं, 'नय निश्चय एकान्त से उसमें नहीं कहेल, एकांते व्यवहार नहिं दोनों साथ रहेल' दोनों साथ रहेल संयोग शब्द समझना। निश्चय है वहाँ व्यवहार है ही। केवली को तो व्यवहार-निश्चय कुछ नहीं, उन्हें तो प्रमाणज्ञान हो गया। मिथ्यादृष्टि को निश्चय है नहीं तो व्यवहार भी नहीं है। सम्यग्दृष्टि से चौथे, पाँचवें, छठवें तीन गुणस्थान में (व्यवहार होता है)। सातवें गुणस्थान में तो ध्यान में हैं, अप्रमत्तदशा में हैं। तो कहते हैं कि चरण दो प्रकार के। श्रावक को दो प्रकार के चरण। राग जो विकल्प उठता है, आता अवश्य है, उसे व्यवहार जानना और अन्तर स्वरूप में लीनता, उसे निश्चय जानना। यह श्रावक।

अब मुनि। मुनि को दो प्रकार का चारित्र है। एक निश्चय, एक व्यवहार। निश्चय स्वभाव की अनुभव दृष्टि सर्वज्ञ समान की हुई और पश्चात् प्रतीति में, लीनता में एकाकार हुआ, निर्विकल्प स्थिरता हुई, उतना निश्चयचारित्र। तीन कषाय का अभाव होकर स्वभाव में स्थिरता हुई, वह निश्चयचारित्र। और पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण

के (विकल्प) उठते हैं, छह आवश्यक—सामायिक, चोविसंथो, वन्दन,.... मुनि को भी। व्यवहार आवश्यक, हों! विकल्प उठे वह। निश्चय आवश्यक स्वरूप में स्थिरता और व्यवहार आवश्यक छह क्रिया मुनि को सवेरे-शाम होती है। छठवें गुणस्थान में भावलिंगी जैनदर्शन के सच्चे साधु। छह आवश्यक का विकल्प उठता है, उसे व्यवहारचारित्र कहा जाता है। आहाहा! निश्चय माने और व्यवहार न माने, मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार माने और निश्चय है नहीं तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

'**न्यान सहावेन कम्म संषिपनं**' तथापि, ऐसा होने पर भी, व्यवहार आने पर भी, व्यवहार होने पर भी ज्ञानस्वभाव में जब एकता होगी, कर्म का विपाक, निर्जरा ... तो तब होगी। जितना वह राग है, उससे हटकर जितना स्वरूप में लीन (होता है)... खसीने, क्या कहते हैं? हटकर—खसकर जितनी स्वरूप में निर्विकल्प शान्ति प्रगट हुई, वह एक ही मोक्षमार्ग है। उससे कर्म खिरते हैं। पश्चात् व्यवहार आता है, उससे कर्म नहीं खिरते। आता अवश्य है, आये बिना रहता नहीं। भूमिका प्रमाण व्यवहार अवश्य आता है। तो उसका उस भूमिका प्रमाण व्यवहार कैसा है, उसका ज्ञान बराबर ज्ञानी करते हैं और स्वभाव का आश्रय लेकर उसमें जितनी लीनता हुई, उससे ज्ञान (पूर्णता को पाता है)। देखो अन्त में। दो बातें की—निश्चय और व्यवहार। परन्तु '**न्यान सहावेन कम्म संषिपनं**' परन्तु एक निश्चय स्वभाव से कर्म खिरते हैं। व्यवहार से कर्म खिरते नहीं। आहाहा! समझ में आया? दूसरा है, हो भाई कहीं। दो प्रकार के चारित्र नहीं? ज्ञानसमुच्चय यह क्या है? इस ज्ञानसमुच्चयसार में है। ३५९ गाथा, १९५ पृष्ठ। यह श्रावक का अधिकार चलता है, भाई! यह पाँचवें गुणस्थानवाले का अधिकार चलता है। ज्ञानसमुच्चयसार। वहाँ अणुव्रत का अधिकार चलता है। ३५९। ५९ कहते हैं न? ३, ५, ९। देखो पीछे। परिग्रह परिमाण व्रत। ये सब अणुव्रतधारी के पाँचवें गुणस्थान की व्याख्या। तो पाँचवें गुणस्थान में भी...

बभं चरन समत्थं दुविहिं चारित्त चरन मयमेयं।
अद सहाव सरुवं, बंभं चरन अनुव्वया हुंति॥३५९॥

अणुव्रती तब कहते हैं, **वही ब्रह्मचर्य के पालने को समर्थ है...** अपना ब्रह्म

अर्थात् आनन्द। ब्रह्म अर्थात् आनन्द में चरना, चरना, रमना, उसमें समर्थ है। **'मयमेयं दुविहिं चारित्त चरन' जो आनन्दपूर्वक निश्चय व्यवहार चारित्र को आचरण करता है...** क्या कहते हैं ? श्रावक पाँचवें गुणस्थान में अपने आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द भी हुआ है निश्चय और साथ में पाँच अणुव्रत और बारह व्रत के जो विकल्प उठते हैं, उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। अभी पाँचवें गुणस्थान की क्या दशा ? क्या व्यवहार ? क्या निश्चय ? इसकी खबर नहीं। हाँक रखे भगवान के नाम से। भगवान ऐसा कहते हैं और वीतराग ऐसा कहते हैं। भाव में बड़ा अन्तर है। जहाँ वस्तु की खबर नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं **'दुविहिं चारित्त चरन मयमेयं'** चरणं—यह आचरण करते हैं। समझ में आया ? व्यवहार का आचरण करते हैं, यह व्यवहारनय से कहा है। निश्चय का आचरण वह निश्चयनय से कहा है। दो नय का आचरण है। आहाहा! **'अद सहाव सरुवं' आत्मा के स्वभाव में रमता है, वही ब्रह्मचर्य अणुव्रती होता है।** भले फिर आया कि पाँचवें गुणस्थान में सच्चे श्रावक को बारह व्रत आदि का विकल्प है, राग आता है, परन्तु **'बंभं चरन अनुव्वया हुंति'** वास्तव में तो भगवान ब्रह्मचर्य आत्मा आनन्द में लीन होता है तो उसके राग को व्यवहार अणुव्रत; स्थिरता हुई, वह निश्चय अणुव्रत है। समझ में आया ? देखो!

भावार्थः—ब्रह्मचर्य अणुव्रती व्यवहार में स्वस्त्री में सन्तोषपूर्वक वर्तता है। अन्य प्रकार कुशील के भावों से विरक्त रहता है। निश्चय से वह अपने आत्मा के स्वभाव का मनन करता है। दोनों बातें हैं या नहीं ? हो गये हैं वीतराग ? श्रावक है न! अभी तो व्यापार-धन्धा करता है पाँचवें गुणस्थान में राजपाट में पड़ा हो। अशुभराग भी आता है और शुभ ऐसे बारह व्रत का विकल्प उठता है, वह शुभराग है। आचरण आता है, परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है। उसे न माने तो एकान्त हो जाये और स्वभाव में एकाग्र हुए बिना व्यवहार माने तो भी मिथ्यादृष्टि हो जाता है। बहुत अटपटी बात है।

मुमुक्षु : है स्पष्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो स्पष्ट परन्तु,.... समझ में आया ?

मुमुक्षु : समझना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, समझना पड़ेगा। अभी तक ऐसी का ऐसी उल्टी गाड़ी चलायी है।

देखो, अब अपने यह चलता है। रात्रि का एक है न मिथ्या सामायिक का नहीं थोड़ा कुछ? श्रावकाचार गाथा ३१४ है। श्रावकाचार है? श्रावकाचार गाथा ३१४। यहाँ है भाई? श्रावकाचार नहीं होगा। देखो, उसमें कहते हैं। रात्रि ... त्याग किसे कहते हैं?

अनेक पाठ पठनंते, वंदना श्रुत भावना।
सुद्ध तत्त्वं न जानंते, सामायिक मिथ्या उच्चंते॥३१४॥

श्रावकाचार। '**अनेक पाठ पठनंते**' **अनेक पाठों का पढ़ना...** '**वंदना**' भगवान की करते हैं, गुरु की करते हैं। '**श्रुत**' शास्त्र की करते हैं, '**भावना**' करते हैं। '**सुद्ध तत्त्वं न जानंते**' समझ में आया? यह तो श्रावकाचार की बात है, हों! ३१४। अपना '**सुद्ध तत्त्वं न जानंते, सामायिक मिथ्या**' यह सामायिक मिथ्या है। सेठी! अपने तत्त्व की पहिचान बिना तेरी सामायिक आयी कहाँ से? समझ में आया? '**अनेक पाठ पठनंते**' वापस ऐसा लिया है। पाठ ऐसा लिया है। साधारण नहीं अनेक पाठ पढ़ने। शास्त्र की स्वाध्याय, बराबर शब्द रटे, शब्द में अन्तर न पड़े। अब शब्द में अन्तर न पड़े, उसमें क्या हुआ? भाव अन्दर में आत्मा निर्विकल्प चैतन्य कौन है, उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान, व्यवहार क्या है, उसका तो भान नहीं। तो कहते हैं कि '**अनेक पाठ पठनंते, वंदना श्रुत भावना।**' शास्त्र की भावना करे। वाँच लो शास्त्र, भावना भाओ। शास्त्र ऐसा और शास्त्र ऐसा। वन्दन करो शास्त्र को।

'**सुद्ध तत्त्वं न जानंते,**' परन्तु शुद्ध आत्मिक तत्त्व का अन्तर सम्यग्ज्ञान है ही नहीं, वह तो राग से मानता है, निमित्त से मानता है, ऐसा मानता है और ऐसा मानता है। '**सामायिक मिथ्या उच्चंते**' उसकी सामायिक मिथ्या कहलाती है। वह रात्रि भोजन में है न एक जगह? गाथा ३०४। २९६। अक्षर में अन्तर पड़ गया है। है तो ३०२ परन्तु छप गया है ३०४। छपने में अन्तर है।

सुद्ध तत्त्वं न जानंते, न संमित्तं सुद्ध भावना।
श्रावगं तत्र न उत्पादंते, अनस्तमितं न सुद्धये॥३०२॥

जो कोई गृहस्थ शुद्ध आत्मिक तत्त्व को नहीं समझते हैं, न उनको सम्यग्दर्शन है, न शुद्ध आत्मिक तत्त्व की भावना है। वहाँ श्रावकपना उत्पन्न हो सकता नहीं। श्रावकपना है ही नहीं। '**अनस्तमितं न सुद्धये**' वह रात्रि आहार का त्याग, उसके आत्मा की शुद्धि के कारणभूत नहीं। रात्रि में नहीं खाऊँ, ऐसा राग मन्द हो इतना। उसमें आत्मा की शुद्धि नहीं है। समझ में आया?

जे नरा सुद्ध दिस्टी च, मिथ्या माया न दिस्टते।
देवं गुरं स्त्रुतं सुद्धं, संमत्तं अनस्तमितं व्रतं॥३०३॥

जो मानव शुद्ध सम्यग्दृष्टि है, जिनमें मिथ्यात्व मायाचार नहीं दिखलाई पड़ता है, जो... 'सुद्धं देवं गुरं स्त्रुतं' शुद्ध वीतरागदेव, वीतरागी साधु, वीतराग विज्ञान शास्त्र को मानते हैं, उन्हीं का रात्रिभोजन त्याग व्रत सफल है। समझ में आया? कठिन बात है जगत को। अब हमारे यह करना या नहीं? अब करने की कहाँ बात है? देखो ३०५ में है। '**जीव रष्या षट् कायस्य**' श्रावक जीव की रक्षा। समकिती की बात है, हों! पहले सम्यग्दर्शन हुआ है, उसकी बात है। इसके बिना सब मिथ्या है। '**जीव रष्या षट् कायस्य**' यह व्यवहार की भाषा है। आत्मा कहीं छह (काय) जीव की रक्षा नहीं कर सकता। सम्यग्दृष्टि मानता नहीं कि हम छह (काय) जीव की रक्षा कर सकते हैं, परन्तु उसे (जीव) न मरे ऐसा भाव आया, उसे छह (काय) जीव की रक्षा का भाव आया, ऐसा कहा जाता है। क्या परद्रव्य की पर्याय आत्मा कर सकता है? यह अर्थ ही न समझे तो गड़बड़ करे श्रावकाचार में से।

'**जीव रष्या षट् कायस्य, संकये सुद्ध भावनं।**' देखो, **शुद्ध दृष्टि, श्रावक शुद्ध दृष्टि षट्काय के जीवों के रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता है।** यह कर्तव्य-फर्तव्य की बात नहीं। वह तो ... जाये, ऐसा विकल्प आता है, इतनी बात है। शीतलप्रसाद ने ऐसा ऐसा अर्थ लिखा है। समझ में आया? भाई! यह तो ऐसी कसौटी है।

मुमुक्षु : .... परख हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर परख हो जाती है। भगवान की वाणी में ऐसा आया नहीं कि तू परद्रव्य की पर्याय कर सकता है। ऐई! शोभालालजी! यह परद्रव्य की पर्याय उससे होती है। तू पर की रक्षा कर सकता है? पर को मार सकता है तीन काल, तीन लोक में? पर की मैं रक्षा कर सकता हूँ, ऐसा मानना वह मिथ्यादृष्टि है। पर की हिंसा कर सकता हूँ, मार सकता हूँ, यह दृष्टि मिथ्यात्व की है। पर को जिला सकता हूँ, मार सकता हूँ, सुखी-दुःखी कर सकता हूँ, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि मूढ़ की है, जैन की दृष्टि है नहीं। ऐई...! देरियाजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो समझे तभी से सवेरा। उसमें क्या है? भूल हो गयी, हो गयी। लोगों को समझना पड़ेगा या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देखो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भाई! अभ्यास करना। दूसरा अभ्यास कैसे हो गया तुम्हारे पुत्र का? लड़का साथ में आया है। ... क्यों भाई क्या करते हो? उसकी सम्हाल करते हैं या नहीं? शोभालालजी! इसी प्रकार यहाँ अपनी पर्याय की सम्हाल करना, समझण करना। पर्याय अपनी प्रजा है। समझ में आया? वह प्रजा अपनी नहीं। पर्याय समझते हो? पर्याय कहो या प्रजा कहो, भगवान पिता है। आत्मा पिता है और पर्याय प्रजा है। है न, उसमें आया न? ममलपाहुड़ में आया है। बाप, चेला-चेली बहुत आया है। बेटा-बेटी यह सब अन्दर में घटित किया है। शास्त्र में घटित किया है। समझ में आया? प्रजा अपनी पर्याय निर्मल होती है, वह अपनी पर्याय है, प्रजा है। और विकार उत्पन्न होता है वह ... प्रजा है। स्वभाव पिता है, त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति प्रभु पिता है। उसमें से निर्मल पर्याय निकलती है। तो कहते हैं... समझ में आया?

'**जलं फासू प्रवर्तते**' देखो, ऐसा लिया। प्रासुक जल काम में लेते हैं। यह तो भाषा है। समझ में आया? प्रासुक जल परपदार्थ मैं ले सकता हूँ या छोड़ सकता हूँ या

पी सकता हूँ, ऐसा वस्तु में तीन काल, तीन लोक में नहीं है। अज्ञानी को भी नहीं है। परन्तु प्रासुक जल का विकल्प उठता है कि मुझे यह नहीं। तो उस विकल्प की अपेक्षा से प्रासुक जल लेते हैं, ऐसा व्यवहारनय का उपचार से कथन है। आहाहा! बहुत अन्तर। सेठी! अब यह आया। कल आया था न, भाई! '**जलं सुद्धं मनः सुद्धं च,**' '**जलं सुद्धं मनः सुद्धं च,**' यह भी व्यवहारनय का कथन है। जल परवस्तु है। ... यहाँ शुद्ध शब्द प्रयोग किया है, वह शुभ के अर्थ में प्रयोग किया है। पाठ शुद्ध है। **जल की शुद्धता से मन की शुद्धता होती है।** ऐसा पाठ लिया न? '**जलं सुद्धं मनः सुद्धं च,**' परन्तु इसका अर्थ दूसरा है कि जब ज्ञानी समकिती को अचेत निर्दोष प्रासुक पानी लेने का विकल्प है तो वह शुभराग है। तो पानी वहाँ अचेतन निमित्त है, तो उससे शुभभाव हुआ, ऐसा कहने में आता है। शुभभाव उससे होता नहीं। ओहोहो!

'**अहिंसा दया निरूपनं।**' देखो, **अहिंसा दया का पालन होता है।** राग की मन्दता में पर जीव को नहीं मारना, ऐसा भाव आया और जब शुद्ध जल प्रासुक का... उसके शुभभाव में दया पालने का भाव है तो वहाँ दया पालन की, ऐसा कहा जाता है। यह तो उसकी पर्याय से होती है, आत्मा की पर्याय उस शुभराग से होती नहीं। समझ में आया? उसमें लिखा है। **वास्तव में पुद्गल का सब जीवों का भावों का असर पुद्गल पर पड़ता है।** शीतलप्रसाद ने लिखा है। बात गलत है।

मुमुक्षु : अन्धकार।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्धकार वह कैसा अन्धकार! और यह सेठ कहे हमको कुछ खबर नहीं होती। जय नारायण! बस! आओ, पैसे ले जाओ, ऐसा करो। बात सच्ची है या नहीं? यहाँ चिह्न किये हैं, हों! उस समय देखकर। उस समय के चिह्न हैं।

वास्तव में पुद्गल का असर जीवों के भावों में... बिल्कुल झूठ है। **और जीवों के भावों का असर पुद्गल पर पड़ता है।** बिल्कुल झूठा—गलत है। महेन्द्रभाई! यह तो बात भाई! वीतराग मार्ग है। यह कोई साधारण प्राणी कायर अपनी दृष्टि से मनवाले, ऐसा मार्ग नहीं है। समझ में आया? और पश्चात् भी बहुत लिखा है। **जिसका असर सर्व शरीर पर पड़ता है।** देखो! बहुत लम्बा-लम्बा लिखा है। शुद्ध खान-पान करने से

उसमें रुधिर, वीर्य शुद्ध होता है। रुधिर, वीर्य शुद्ध होने से उपभोग के ऊपर भी असर पड़ता है। लम्बी-लम्बी बात। बहुत गड़बड़ कर डाली है। समझ में आया? एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय में असर तीन काल, तीन लोक में करती नहीं। अपनी पर्याय अपने से होती है, तब उस पदार्थ को निमित्त कहा जाता है। परन्तु यह बात कर्ताकर्म का अधिकार, उसमें आया नहीं न, इसलिए लोग समझते नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सभी द्रव्य स्वतन्त्र हैं। क्या जल शुद्ध आया तो शुभभाव हुआ? बिल्कुल नहीं। अनन्त बार शुभ किया। द्रव्यलिंगी तो शास्त्र में अनन्त बार देखता था। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' अब इसमें क्या आया? जल शुद्ध लिया, आहार शुद्ध लिया, ४६ दोषरहित आहार लेता था। शुभभाव है। शुभभाव है, उसे निमित्त कहते हैं। तो शुभभाव से हुआ है? और शुभभाव से क्या धर्म होता है? समझ में आया?

मुमुक्षु : दुकान उठ जानेवाली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुकान उठ जाने के लिये ही है यह। कहो, समझ में आया? ज्ञानसमुच्चय (सार) में आया न? कहो, कितनी गाथा अपने चलती है यह? ८ चलती है, ८ चलती है, लो। थोड़े-थोड़े दृष्टान्त देकर....

अब थोड़ी एक ५०९ लेते हैं थोड़ी।

गमं च अगमं दिस्टं, गमयं च अनंतनंत ससरूवं।
सुनियं च मुक्ति मग्गं, सुनिय च न्यान कम्म गलियं च॥५०९॥

५०९ उपदेशशुद्धसार में। लो बराबर ९ का अंक आया और अपने यहाँ पूरा हुआ। तुम्हारे आठ व्याख्यान भी पूरे हो गये। क्या कहते हैं? '**गमं च अगमं दिस्टं**' भगवान आत्मा अगम्य है। मन, वचन, काया से न जाननेयोग्य आत्मा है। '**गमं दिस्टं**' ज्ञान द्वारा ज्ञात होता है। समझ में आया? '**गमयं च अनंतनंत ससरूवं।**' ओहो! यही आत्मा का अनन्त स्वभाव। अनन्त-अनन्तरूप अन्दर स्वभाव गुण शक्ति अनन्त है। एक समय में गुण अनन्त है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, स्वच्छत्व, विभुत्व, प्रमेयत्व, प्रकाशत्व

आदि अनन्त एक समय में शक्ति, हों! गुण अनन्त हैं। **ऐसा अनन्त स्वभाव अनुभव करनेयोग्य है।** और '**सुनियं च मुक्ति मग्गं,**' अब यहाँ सिद्धान्त है थोड़ा। मोक्ष के मार्ग को सुनना चाहिए। तुम्हारे अपने आप शास्त्र वाँचने से ख्याल नहीं आयेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देरियाजी! 'गुरु बिना ज्ञान नहीं' आता है या नहीं? यह बाद में आता है। यहाँ तो बहुत आता है। पीछे है कहीं। 'गुरु बिना ज्ञान नहीं' यह पीछे है कहीं सब।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ... समझ में आया?

अब क्या कहते हैं? मोक्ष के मार्ग को सुनना चाहिए। सुनने में क्या लिया? गुरुगम से सुनना चाहिए। अपनी कल्पना से शास्त्र वाँचे, उसे समझ में नहीं आता।

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग की बात वाँचें, ऐसा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वाँचे, ऐसा नहीं। '**सुनियं**' ऐसा कहा है। तुम्हारे दलाल है न! मोक्षमार्ग वाचनं नहीं। गुरु ज्ञानी के पास से मोक्षमार्ग सुनना। देखो, और '**सुनिय च न्यान कम्म गलियं च**' अब दो न्याय है कि सुनता है, तब तो विकल्प है। सुनता है न? तो विकल्प तो है। गणधर भी सुनते हैं। यह तो मोक्षमार्ग में है तो भी गणधर, भगवान की वाणी—दिव्यध्वनि सुनते हैं। विकल्प है। सुनने का राग आता है। वीतराग नहीं हुए न! वरना एक अन्तर्मुहूर्त में गणधरदेव चार ज्ञान, चौदह पूर्व की रचना का ज्ञान प्रगट करते हैं। वे ही गणधर, भगवान के पास अभी विराजते हैं। सीमन्धर भगवान के पास गणधर विराजते हैं। यहाँ गौतम विराजते थे। वहाँ दूसरे गणधर हैं भगवान के पास महाविदेहक्षेत्र में भगवान की वाणी सुनते हैं। सुनना वह विकल्प है, परन्तु पश्चात् अन्तर में अनुभव दृष्टि में विकल्प का अन्दर निषेध आता है। वह विकल्प मेरी चीज़ नहीं और मेरे स्वभाव में भी नहीं। देखो!

सुनकर के... 'न्यान सुनिय कम्म गलियं च' आत्मा के ज्ञानस्वभाव में लय होने से... देखो, दो बातें कीं। पहले सुनना। सुने बिना समझ में नहीं आता। अपनी कल्पना से शास्त्र वाँच ले और अर्थ करे। निश्चय-व्यवहार क्या है, उपादान-निमित्त क्या है,

स्व-पर क्या है, इसकी खबर बिना अर्थ करे तो कुछ का कुछ उल्टा हो जाये। वीतराग के मार्ग में भाव उल्टे हो जाते हैं। शब्द में अन्तर हो, उसकी कोई बात नहीं। समझ में आया? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न भाई! कि '**जदि दायेज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं।**' मैं अनुभव की बात करता हूँ, उसमें ध्यान रखना। शब्दों में कोई फेरफार हो तो उसके ऊपर तुझे लक्ष्य नहीं करना। शब्द के जंजाल अनेक प्रकार से बात है। व्याकरण, संस्कृत, भूत, भविष्य काल, ऐसा बहुत आवे, उसमें कुछ अन्तर हो जाये तो तुझे उसका लक्ष्य नहीं करना। हमारा यथार्थ भाव क्या है, उसका तू लक्ष्य करके अनुभव करना। ऐसा पाँचवीं गाथा में आया है।

तो यहाँ कहते हैं कि '**सुनिय च न्यान**' दूसरी बात कि भगवान के पास या मुनि के निकट क्या सुना है? कि तेरे शुद्धस्वभाव सन्मुख मुड़। विकल्प आता है, होता है, व्यवहार है, परन्तु स्वभाव सन्मुख ढलने से ही तुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होंगे। ऐसा मोक्षमार्ग सुना, ऐसा प्रगट करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)